विषय विष नहीं

विषय विष नहीं

विमल मित्र

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

हम, तुम, सभी जब अपने-अपने जीवन को लेकर अत्यन्त व्यस्तता में डूबे रहते हैं, हमारे चारों तरफ इस धरती पर कितने काव्य, कितने नाटक, कितने उपन्यास लिखे जा रहे हैं, इसका हिसाब-किताब कौन रखेगा ? जिस प्रकार यह दुनिया छोटी नहीं है, आदमी भी उसी लिहाज से इतने अधिक हैं कि गणना नहीं हो सकती। किसको केन्द्र मानकर लिखूं, किसके बारे में सोचूं-समझूं, कितने व्यक्तियों की कितनी समस्याओं के कारण माथापच्ची करता रहूं ? बीच-बीच में जब मैं सड़क पर चहलकदमी करता हूं, आसपास के तमाम लोगों के चेहरे-मोहरे की ओर गौर से ताकता हूं तो सभी व्यस्त दीखते हैं, सभी हतप्रभ—सभी समस्याओं में उलझे हुए। हालांकि किसी सड़क के मोड़ पर आदमी का जत्था जब भीड़ बन जाता है, सभी आदमी एक-दूसरे से अपनी-अपनी बातें बताने को बेचैन दीखते हैं। कभी-कभी देखने में आता है कि एक आदमी भागती भीड़ की तरफ चुपचाप ताक रहा है, फिर वह सिगरेट का कश लेता है और आगे की ओर बढ़ जाता है।

मैं हर आदमी की तमाम बातें जानना चाहता हूं, हर किसी की समस्या से अवगत होना चाहता हूं।

बात ऐसी नहीं है कि हरेक की तमाम बातों की जानकारी से मेरा बहुत ही उपकार होगा या मैं सभी की समस्याओं का निदान खोज निकालूंगा।

असल में निदान किसी के वश की बात नहीं है। इस विश्व के सृष्टिकर्ता जब किसी मनुष्य को दुनिया में भेजते हैं, भेजने के साथ ही मन नामक एक वस्तु उसके अन्दर डाल देते हैं और कहते हैं, "अब जाकर संघर्ष करो"

देह के साथ अगर यह मन न होता तो झंझट की कोई बात नहीं थी। लेकिन यह हुआ नहीं; दुनिया में जितनी भी झंझटों की शुरुआत होती है, उसका कारण यह मन ही है। यह मन ही आदमी के सभी विनाशों की जड़ है।

इसी तरह की एक समस्या की बातें आपको बताने जा रहा हूं।

हर रोज सवेरे नींद खुलते ही सड़कों पर घूमने के लिए निकलना मेरी आदत में शुमार हो गया है। इसका कारण आंशिक तौर पर स्वास्थ्य के प्रति सजगता है और आंशिक तौर पर देखना-परखना। और न केवल देखना बल्कि देखने के साथ-साथ सुनना भी। देखना और सुनना मेरी प्रकृति है।

देखते-देखते, सुनते-सुनते ही कितने आदमियों को मैंने जाना-पहचाना है, कितनों की समस्याओं से मैं खुद जड़ित हो गया हूं, इसकी कोई सीमा नहीं। लेकिन बहुत बार ऐसी भी बातें हुई हैं जबकि बहुत अधिक जान नहीं पाया, बहुत अधिक सुन नहीं सका।

कभी-कभी सड़क के किनारे दो-चार लड़के आपस में गपशप करते दिखते हैं। बगल से गुजरता हूं तो उनकी बातों की भनक कानों में पहुंचती है। उनकी बातचीत का सिलसिला या तो सिनेमा, या लड़की या कि किसी घर की कलंक-जनित कहानी के गिर्द चक्कर काटता है। बगल से गुजरते वक्त बातों के जो टुकड़े कानों में पहुंचते हैं, उन्हीं से उनके चरित्र का आभास मिलता है।

परन्तु जब पार्क में चक्कर काटता हूं तो और ही दृश्य दृष्टि-पथ में आते हैं, और ही तरह के बहस-मुबाहसे सुनने को मिलते हैं। सात से आठ और आठ के बाद नौ बजने-बजने को हैं। पार्क के अंधेरे कोने में लड़के और लड़कियों के जोड़े अन्तरंगता में बातचीत करने में मशगूल हैं। बगल से गुजरते वक्त उनकी बातचीत के जो टुकड़े मेरे कानों में आते हैं, उनसे उनके बहस-मुबाहसे की कोई झलक नहीं मिलती।

लेकिन मन ही मन मुझे दुख का अहसास होता है। अहा, बेचारे गरीब हैं। कहीं किसी ड्राइंगरूम के एकांत में बैठकर बातचीत कर सकें, ऐसा आश्रय-स्थल उन्हें नसीब नहीं। कोई गाड़ी भी उनके पास नहीं है। गाड़ी ड्राइव करते हुए गंगा या लेक के किनारे वीरान में जाकर, जन-साधारण की आंखों की ओट में बैठकर दो हृदय आपस में वार्तालाप कर सकें, ऐसा भी स्थान उनके लिए नहीं है।

इन्हीं अभियानों के दौरान एक दिन केशव बाबू से मेरा परिचय हुआ।

केशव बाबू कहते, "असल में जीवन नाटक नहीं है साहब, जीवन एक यातना है। नाटक और यातना एक ही वस्तु नहीं हुआ करते..."

मैं पूछता, "क्यों ? आप ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं ?"

"यही देखिए न," केशव बाबू कहते, "जिन्दगी-भर मैंने कभी किसी काम से जी नहीं चुराया, बचपन से ही मन लगाकर लिखा-पढ़ा। सोचा था, अच्छा स्टूडेंट होने पर ही मान-सम्मान मिलेगा। मगर नतीजा क्या हुआ ? बी० ए०, एम० ए० में फर्स्ट करने से मुझे क्या हासिल हुआ ?"

केशव बाबू के मन की बात जानने के ख्याल से मैं कहता, "मगर गलती तो आपकी ही है केशव बाबू, सिर्फ मन लगाकर लिखने-पढ़ने से, बी० ए०, एम० ए० में फर्स्ट करने से ही क्या होता है ? उसके साथ निष्ठा की जरूरत पड़ती है।"

"निष्ठा ? निष्ठा के बारे में कह रहे हैं ? जानते हैं, तीस बरसों तक मैंने लगातार काम किया है, उस बीच एक भी दिन गैरहाजिर नहीं रहा, एक भी दिन लेट नहीं। जिस दिन मेरी पत्नी की मृत्यु हुई..." कहते-कहते केशव बाबू की आवाज एक क्षण के लिए जैसे रुक गई थी।

असल में केशव बाबू से मेरी जो जान-पहचान हुई, एक ही दिन में वह जान-पहचान घनिष्ठता में परिवर्तित नहीं हुई थी। शुरू-शुरू में मैं उन्हें बालीगंज के बड़े पार्क में चुपचाप बैठा देखता था।

आमतौर से बूढ़े लोग शाम के वक्त जमात में बैठते हैं और व्यतीत की स्मृतियां दोहराते हैं। एक दिन का पूरा वक्त वे अपने-अपने घरों में किसी तरह गुजार देते हैं। हर किसी का परिवार बढ़ गया है। उम्र बढ़ने पर सभी वैसे ही हो जाया करते हैं। तब परिवार में जिनकी उम्र कम होती है, उन्हीं के प्रभाव और ख्याति-सम्मान की अभिवृद्धि होने लगती है और जो परिवार के स्वामी होते हैं उनका प्रभाव और ख्याति-सम्मान उसी अनुपात से कम होने लगता है। नियम यही है।

यही वजह है कि उम्र ढलते ही वृद्ध गृह-स्वामी बिलकुल एकाकी पड़ जाते हैं। बात-चीत करने के लिए कोई संगी-साथी नहीं मिलता। जो उनकी बातें सुन सकें, ऐसा श्रोता उन्हें नहीं मिलता। तब एकमात्र अवलंब होते हैं पार्क,

सुबह-शाम को पार्क में बैठने वाले हमउम्र लोग। और वे बूढ़े न तो दोस्त-मित्र हुआ करते हैं और न ही सगे-सम्बन्धी। उन लोगों से ठीक से सुख-दुख की बातें नहीं हुआ करतीं। किसी से भी संवेदना के शब्द सुनने को नहीं मिलते। एक का दूसरे से केवल श्रोता और वक्ता का ही सम्बन्ध रहा करता है। यह मैं बहुत दिनों से अनुभव करता आ रहा हूं।

लेकिन केशव बाबू की बात अलग ही है। उनके न तो कोई संगी-साथी ही दीखते थे और न वे किसी से बातचीत ही करते थे। चुन-चुनकर वे ऐसे एकान्त कोनों में जाकर बैठते थे, जहां कोई नहीं जाता था।

हर रोज इसी तरह हुआ करता था।

यह देखकर मुझे हैरानी होती थी। दुनिया में, दुनिया की राह-बाट में, दिलचस्पियों के इतने साधन हैं और यह बुड्ढा यहां अकेले बैठकर अपना वक्त कैसे गुजारता है?

एक दिन मौका देखकर मैं उसी बेंच की खाली जगह पर जाकर बैठ गया। मेरे बैठने का उद्देश्य यही था कि उनसे जान-पहचान हो सके। लेकिन उन्होंने मेरी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। मैं कोई जीवित व्यक्ति उनकी बगल में हो सकता हूं, इस बात को उन्होंने सोचा तक नहीं।

एक दिन मेरे मन में हुआ कि उनसे बातचीत करूं। यानी उनसे परिचित होऊं। बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद मैंने कहा, "बता सकते हैं कि अभी वक्त क्या हो रहा है?"

केशव बाबू ने तटस्थ भाव से कहा, "मेरे पास घड़ी नहीं है।"

घड़ी नहीं है तो मत रहे। मगर उन्हें कुछ-न-कुछ कहना तो चाहिए। फिर कोई बात करूं, इसका सूत्र मुझे खोजने पर भी न मिला।

३

पहले दिन इसी प्रकार परिचय हुआ।

उसके दूसरे दिन बाद थोड़ा और। उसके बाद थोड़ा और। अन्ततः जब सातेक दिन व्यतीत हो गए, वे बोले, "आप हर रोज आया कीजिए..."

"मैं हर रोज़ आता हूं।" मैंने कहा।

'हां, हर रोज आया कीजिए," उन्होंने कहा, "इस मुक्त आकाश के तले, स्वच्छन्द वायु में, जहां हरी-भरी घास है। ये पेड़-पौधे। इनकी ही कीमत है करोड़ों रुपये।"

"सो तो है ही।" मैंने कहा।

भले आदमी ने कहा, "आपकी उम्र कम है, अभी मेरी बात की कीमत आपकी समझ मे नही आएगी, किसी दिन बत्तीस से बयालीस होगी, बयालीस से बावन, बावन से बासठ—तब आपकी समझ में आएगा कि इस मुक्त आकाश, स्वच्छन्द वायु की कीमत क्या है। आपकी तरह जब मैं कम उम्र का था, तब बात मेरी भी समझ में नहीं आती थी। अब समझ रहा हूं…"

उसके बाद एक क्षण चुप रहने के बाद बोले, "कभी ज्यादा बातचीत मत करें। ज्यादा बातचीत करने का मतलब है—आयु-क्षय।"

मैं उनकी बातें मन लगाकर सुना करता था। और वे आहिस्ता-आहिस्ता, रुक-रुक कर, बातचीत किया करते थे।

"देखिए," वह कहते, "मैंने जिन्दगी-भर कभी काम से जी नहीं चुराया, बचपन मे मन लगाकर लिखा-पढ़ा, लेकिन बी० ए०, एम० ए० मे फर्स्ट होने से ही क्या आता-जाता है?"

मैंने कहा, "जरूरत है…"

"किसी दिन यह सब आपको समझाऊंगा। एक दिन मे आप सब कुछ समझ नही सकेंगे। मिसाल के तौर पर यही लीजिए, कि मैंने जिन्दगी भर नौकरी की है। जिन्दगी के आखिरी वक्त में, नौकरी की एक-एक सीढ़ी तय करता हुआ, मैं ऊंचे-से-ऊंचे पद पर पहुच गया। उस वक्त मेरे बास बनकर जो मिनिस्टर साहब आए, वे थे इंटरमिडियेट-फेल। और मैं उनके अण्डर काम करता था। मैं यानी जो एम० ए० मे फर्स्ट क्लास-फर्स्ट आया था। इसीलिए जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई…"

रोज-रोज यही सिलसिला चल रहा था। कुछ बातें बताते थे और कुछ मन के अन्दर दबाकर रख लेते थे। सब कुछ जाहिर करने मे उन्हे जैसे किसी बाधा का अनुभव होता था।

फिर भी मैंने निराशा को अपने पास फटकने नही दिया। किसी से उसकी

कहानी जाननी हो तो निराश होने से काम नहीं चल सकता है। इसके लिए धैर्य ज़रूरी है, तितिक्षा और अध्यवसाय की ज़रूरत पड़ती है। और धैर्य, निष्ठा तथा तितिक्षा के अर्जन के लिए इसी तरह मुक्त आकाश के नीचे, हरे पेड़-पौधों के तले, एकाकी बैठकर आत्मचिन्तन करना बहुत ही आवश्यक है।

बातें उन्होंने बड़ी-बड़ी कही थीं। लेकिन सिर्फ रूखी-सूखी बातों से कहानी नहीं लिखी जा सकती। खैर, कहानी चाहे न हो, चरित्र तो है। यह भी क्या कम लाभ है। एक बार चरित्र की सृष्टि हो जाए तो कहानी गढ़ने में वक्त ही कितना लगता है। एक अच्छी कहानी के लिए मैं अनन्त काल तक प्रतीक्षा कर सकता हूं।

उसी प्रतीक्षा में मैं हर रोज पार्क जाया करता हूं, वहां बेंच के एक किनारे बैठा करता हूं।

सो एक दिन एकाएक कहानी मिल गई।

४

उस दिन जाने पर केशव बाबू को बैठे हुए पाया। मैं और-और दिनों की तरह उनकी बगल में जाकर बैठ गया। उस दिन भी उसी तरह की बातचीत चली। वही चेहरा-मोहरा। वे सामने की ओर ताक रहे थे। मुझे अपनी बगल में बैठते देखा, लेकिन एक शब्द भी नहीं बोले।

मैंने ही बात की शुरुआत की, "आज बेहद गरमी है, केशव बाबू..."

लगा, मेरी मौजूदगी के कारण केशव बाबू की चेतना वापस चली आई है।

वे बोले, "ओह, आप भी आए हैं? आकर आपने अच्छा ही किया है, चाहे गरमी का प्रकोप हो या सरदियों का, आना अच्छा ही होता है।"

"आज बारिश हो सकती है..." मैंने कहा।

केशव बाबू ने आसमान की ओर देखा।

"बारिश होने से डरने की कौन-सी बात है," उन्होंने कहा, "मेरा घर नेकट ही है। इसके अलावा ऐसी गरमी है कि बारिश होना ही अच्छा है।"

"आपका घर निकट ही है ?" मैंने पूछा।

केशव बाबू बोले, "हां, वो रहा..."

यह कहकर उंगली से उन्होंने पूरब के एक दोमंजिले मकान की ओर इशारा किया।

एकाएक झमाझम बारिश की बूंदें बरसने लगीं। जो लोग पार्क में वायु-सेवन के ख्याल से आए थे, भागने लगे। केशव बाबू भी उठकर खड़े हुए।

क्या करूं, मेरी समझ में नहीं आया। मेरा डेरा बहुत दूर है। साथ में छाता या वाटरप्रूफ नहीं है कि बैठा रहूं।

केशव बाबू ने उठते हुए कहा, "आप इस बारिश में कहां जाइएगा, मेरे घर पर चलिए।"

अन्ततः वही करना पड़ा।

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए वे अपने घर के पास पहुंचे और सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाने लगे।

"मिलू, बिटिया मिलू, दरवाजा खोलो बेटा..."

मैं उनकी बगल में खड़ा-खड़ा भीग रहा था। कुछ देर के बाद जब एक आदमी ने दरवाजा खोला तो मेरी निगाह नौकर-जैसे एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी, जो देह पर जनेऊ लटकाए था।

केशव बाबू बोले, "सूखे हुए दो तौलिए ले आओ..."

यह कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, "आइए, इस सोफे पर बैठ जाइए।"

५

मकान आरामदेह है, सजा-सजाया। दीवार पर कुछ किताबें। उस वक्त वे मुझे बिठाकर चले गए थे।

बुक-केस के सामने जाकर मैंने किताबें देखीं। सबकी सब क्लासिक किताबें थीं। जिन पुस्तकों का किसी भी काल में क्षय नहीं होता, वैसी ही पुस्तकें। बंकिमचन्द्र-ग्रन्थावली, माइकेल मधुसूदन दत्त की पुस्तकें, भूदेव मुखोपाध्याय

की रचनाएं, दीनवन्धु मित्र का नीलदर्पण। उन्हीं की वगल में शेक्सपीयर, मिल्टन, गिव्वन, रसेल की रचनाएं।

एकाएक कमरे के अन्दर आकर केशव वावू ने कहा, "वह सव आप क्या देख रहे हैं ?"

मैं वोला, "आप तो वहुत वड़े पाठक हैं, सवकी सव पढ़ने के लायक हैं।"

"अरे, नहीं-नहीं, ये पुस्तकें मुझे प्राइज़ में मिली थीं। वचपन से ही स्कूल-कालेज में फर्स्ट आता रहा हूं, प्राइज़ मिला है, स्कालरशिप मिला है। स्कालर-शिप के पैसे से लिखना-पढ़ना जारी रखा है, फिर भी कितावों को सजाकर रख दिया है। वचपन में ही इन कितावों को पढ़ा था, उसके वाद इन्हें छुआ तक नहीं है।"

"क्यों ?" मैं वोला, "आपके लड़के-वच्चे तो पढ़ सकते हैं।"

"लड़के-वच्चे ? आप क्या कह रहे हैं ? आजकल के लड़के-वच्चे ऐसी कितावेंगे पढ़ेंगे ? 'उल्टा रथ', 'प्रसाद', 'सिनेमा-जगत', 'देश' वगैरह पढ़कर समझते हैं कि वे साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं। जानते हैं, लिखना-पढ़ना इस देश से विदा हो चुका है। मुझे इसी वात का दुख है। एक ही चीज़ में वे लोग ध्यान लगाते हैं और वह है सिनेमा। सिनेमा-हाउस के सामने आपने लाइन देखी है ? चावल की दुकान के सामने की लाइन से भी वड़ी लाइन रहती है..."

केशव वावू तव तक वैठ चुके थे, मैं भी वैठ चुका था। उस समय भी वारिश का समां वंधा था।

केशव वावू का कथन जारी था, "मैं पुराने ज़माने का आदमी हूं, हो सकता है इसीलिए मुझे यह सव अच्छा नहीं लगता। हो सकता है, गलती में मैं ही हूं और वे लोग सही हैं। लेकिन मैं कहूं, सारी दुनिया जिस ओर दौड़ रही है, वह दिशा ही गलत है। इससे आदमी का भला नहीं होगा, यह वात मैं आपसे भी कह रहा हूं..."

मैं वोला, "आप ठीक ही कह रहे हैं। इस देश में जिस तरह का सिनेमा चल रहा है, उससे आदमी की हानि ही होगी। सरकार साहित्य के लिए कुछ भी नहीं करती, मगर सिनेमा के लिए करोड़ों रुपए खर्च करती है।"

एकाएक केशव वावू ने पूछा, "सोचा था, आपसे एक वात पूछूं, पर पूछ

नहीं पाया था। पूछना भूल ही जाता था। आप क्या करते हैं?"

"मैं लिखता-विखता हूं," मैंने कहा।

केशव बाबू के लिए लेखन का मूल्य क्या हो सकता है, इसकी मुझे जानकारी नहीं थी। क्योंकि बहुत-से जानकार लोग लेखन को किसी कार्य के रूप में नहीं लेते हैं।

उन्होंने उत्सुकता के साथ पूछा, "लिखने-विखने का मानी?"

मैंने अवहेलना के साथ इस बात को नजर-अन्दाज करने के ख्याल से कहा, "सो वैसा कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है, काम-धाम न रहने के कारण ही यह सब करता हूं। कुछ-न-कुछ करना ही है, बेकार जो ठहरा।"

केशव बाबू ने पूछा, "सो तो है, मगर उससे गृहस्थी चल जाती है?"

"बिल्कुल नहीं।" मैंने कहा।

केशव बाबू बोले, "चल ही नहीं सकती। जितनी भी अच्छी पुस्तकें हैं, प्राचीन काल में ही लिखी जा चुकी हैं। वे सबकी सब नष्ट हो चुकी हैं…"

मैं इसके बाद क्या कहूं! बस, इतना ही कहा, "आप ठीक ही कह रहे हैं।"

उस समय बारिश कुछ कम हो गई थी। मैं बोला, "अब चलूं…"

यह कह मैं वहां से चला आया।

६

आदमी को पहचानने के लिए धैर्य की जरूरत पड़ती है। कोई भी आदमी दूसरे के सामने अपनी कमजोरी जाहिर नहीं करना चाहता है। चरित्र की गोपनीय दुर्बलता को वह बड़ी सजगता के साथ अपने हृदय के निभृत कोने में छिपाकर रखता है, लोगों की निगाह से बचाकर रखना चाहता है।

शीघ्रता करने से आदमी सतर्क हो जाता है। स्वयं को सहेज-समेट कर, एक छद्म आवरण से अपनी दुर्बलता को ढंककर रख लेता है।

इसीलिए इन मामलों में शीघ्रता करने से ही मुसीबत का सामना करना पड़ता है। सारी मेहनत व्यर्थ साबित होती है।

यही वजह है कि केशव बाबू से घनिष्ठता बढ़ाने के लिए मैंने अधिक उत्सुकता प्रकट नहीं की। दो-चार दिन पार्क नहीं गया—इसलिए कि वे यह समझ नहीं सकें कि मैं उनकी इस निःसंगता के कारणों का पता लगाना चाहता हूं।

दो-चार दिनों के बाद मैं जब पहुंचा तो केशव बाबू को बहुत ही गम्भीर पाया। यों उनके चेहरे पर हमेशा गम्भीरता छाई रहती है। यह कोई नई बात नहीं। लेकिन उस दिन उनके चेहरे पर गम्भीरता ही नहीं थी, बल्कि एक उदासी भी तैर रही थी।

उनके पास जाकर मैंने पूछा, "क्या बात है, आपकी तबीयत खराब है क्या ?"

मेरी बात सुनकर उनकी चेतना वापस आई। वे बोले, "ओह, आप हैं ! मेरी नज़र आप पर गई ही नहीं…बैठिए…"

मैं उनके पास बैठ गया। बोला, "आज आप कुछ और ही तरह के दीख रहे हैं।"

उन्होंने पूछा, "कैसा ?"

"लगता है, किसी बात पर आप गहराई से सोच रहे हैं।" मैंने कहा।

"सोच रहा हूं ?" मानो, उन्होंने अपने-आप से प्रश्न किया।

बोले, "आदमी में चिंता रहना स्वाभाविक है। जीवित रहने का अर्थ ही है, कुछ-न-कुछ सोचना। लेकिन मेरी चिन्ता कुछ और ही तरह की है।"

मैंने अधिक उत्सुकता नहीं ज़ाहिर की। कहीं ऐसा न हो कि वे स्वयं को और अधिक समेट लें। किन्तु नहीं, अबकी उन्होंने स्वयं को कुछ खोला। शायद अपने प्रति मेरी आसक्तिहीनता उन्हें अच्छी लगी।

वे बोले, "चिन्ता के लिए मेरे पास है ही क्या ! नौकरी से रिटायर हो चुका हूं, प्रोविडेण्ट फंड के रूप में मोटी रकम मिली है। बालीगंज में अपना एक मकान भी बनवाया है। बाहरी तौर पर बहुतों के दिल में मेरे प्रति ईर्ष्या का भाव है। जानता हूं कि उनके सामने मैं ईर्ष्या का ही पात्र हूं। इसके अलावा न तो मैं डयबटीज़ का मरीज़ हूं, न ब्लड-प्रेशर का। इस उम्र में हर कोई जिससे तकलीफ पाता है, मैं उससे मुक्त हूं। रात में मुझे नींद आती है। अब भी, अगर मिले तो, मैं एक सेर मांस खाकर पचा सकता हूं। अभी भी इस वक्त

मैं आपसे बातचीत करते-करते चार-पांच मील पैदल चलकर जा सकता हूं। कहीं एक क्षण के लिए बैठूंगा नहीं, हाफूंगा नहीं, आराम तक नहीं करूंगा। मेरा हर्ट बिलकुल ठीक है, ब्लड-सुगर नार्मल है, कालस्ट्रल एक सौ सत्तर, प्लसबीट छिहत्तर। इससे बेहतर स्वास्थ्य और क्या हो सकता है?"

"सो तो है ही···" मैं बोला।

'लेकिन अपने एक भाई के चलते मुझे कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है···"

"भाई के चलते? अपने सगे भाई के कारण?" मैंने पूछा।

"हां, मेरा सगा भाई, सहोदर भाई, वही भाई मेरे जीवन की सबसे बड़ी समस्या बन गया है।"

"आपसे छोटा है या बड़ा?"

केशव बाबू बोले, "मुझसे छोटा है, उम्र में मुझसे बहुत छोटा। अभी उसकी उम्र यही उनतीस-तीस होगी। मेरे पिताजी का देहान्त हो चुका है, मा भी विदा हो चुकी है। पिता ने मरने के समय उसे मेरे हाथों में सौंपकर कहा था, "केशव, वासव की देखरेख करना। वासव को तुम्हारे हाथों में सौंपकर ही मैं निश्चिन्तता के साथ मर पाऊंगा। वासव आदमी नहीं बन सका, आखिरी घड़ी में यही दुख मेरे मन में रह गया···उस समय पिता की आखिरी घड़ी चल रही थी। सांस लेने में उन्हें तकलीफ हो रही थी। पिता का हाथ पकड़कर मैंने कहा, "पिताजी, चाहे मुझे लाख तकलीफ क्यों न झेलनी पड़ें, वासव और मैं हमेशा एक साथ रहेंगे, उसके तमाम सुख-दुख को मैं अपना सुख-दुख समझूंगा। तुम निश्चिन्त रहो···"

मैं कहानी सुनने में तल्लीन था। पूछा, "उसके बाद?"

केशव बाबू सम्भवतः पुरानी स्मृतियों की बातें कहते-कहते भाव-विभोर हो गए थे। उससे मुक्त होने में थोड़ा समय लगा। उसके बाद कुछ क्षणों तक हम दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। वे खामोशी में डूबे रहे।

मैंने ही पहले-पहल चुप्पी तोड़ी, "वे क्या आपके साथ एक ही मकान में रहते हैं?"

केशव बाबू बोले, "कहा न, पिता की मृत्यु के समय मैंने उनसे वादा किया था कि मैं उसकी देख-रेख करूंगा। अब भी उसकी देख-रेख कर रहा हूं। जब

तक ज़िन्दा रहूंगा, देख-रेख करता ही रहूंगा। चाहे मेरी जितनी ही हानि करे, जितनी भी बदनामी फैलाए, जितनी ही बेइज़्ज़ती करे, मैं हमेशा बरदाश्त करता रहूंगा। मैं कभी उसे घर से नहीं निकालूंगा—क्योंकि मृत्युशय्या पर पड़े पिता को मैंने वचन दिया था कि मैं वासव की देख-रेख करूंगा…"

यह कहकर केशव बाबू चुप हो गए।

यह समझने में मुझे कठिनाई नहीं हुई कि भाई के व्यवहार से केशव बाबू को मानसिक आघात पहुंचा है, नहीं तो उनके-जैसा एक गम्भीर-अल्पभाषी मनुष्य इस तरह एक अल्पपरिचित व्यक्ति के सामने ज़बान क्यों खोलता ?

दूसरों के पारिवारिक मामलों में अपनी ओर से किसी तरह की उत्सुकता या मंतव्य प्रकट करना ठीक नहीं होता है। ज़्यादा-से-ज़्यादा हम संवेदना के दो शब्द प्रकट कर सकते हैं। इसलिए मैंने संवेदना के तौर पर ही कहा, "कम-उम्र रहने से आदमी में दायित्व-बोध नहीं हुआ करता। उम्र बढ़ते ही सुधार आने लगेगा।"

केशव बाबू बोले, "सुधर जाए तो जान में जान आए…"

"आपके भाई की शादी हो चुकी है ?" मैंने पूछा।

"शादी ?" केशव बाबू बोले, "शादी वह करना ही नहीं चाहता। उसकी शादी करने की मैंने बहुत ही कोशिशें की हैं। कलकत्ते की खानदानी खूबसूरत लड़कियों को देख-सुनकर शादी करने की कोशिशें की हैं। लेकिन वह शादी करने को राज़ी नहीं है।"

"शादी नहीं करेगा ? क्यों ? शादी करने में आपत्ति क्या है ?"

"आपसे कहा न, स्वभाव। मेरे भाई का स्वभाव-चरित्र ही खराब है…"

बातचीत समाप्त होने के पूर्व ही एक आदमी दौड़ता हुआ आया और केशव बाबू के पास खड़ा हो गया।

"मालिक, छोटे बाबू आये हैं और आते ही उन्होंने शोर-शराबा मचाना शुरू कर दिया है। हम लोगों को जो-सो गाली-गलौज कर रहे हैं…"

केशव बाबू बेचैन हो उठे। बोले, "तुम्हारी दीदी जी कहां हैं ?"

नौकर ने कहा, "दीदी जी अपने कमरे में हैं, आपको यहां से बुला लाने के लिए भेजा है।"

केशव बाबू के चेहरे पर उदासी तिर आई।

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। वे इतने शांत-शिष्ट, गम्भीर आदमी हैं। देखने से लगता है कि सुखी आदमी हैं, कहीं किसी तरह की अशांति नहीं है।

केशव बाबू उठकर खड़े हो गए और बोले, "चलो…"

मैं उनकी बगल में बैठा हूं, उन्हें इस बात का ख्याल ही नहीं रहा। नियमतः उन्हें मुझसे विदा लेनी चाहिए थी, किन्तु इस बात का भी उन्हें ख्याल न रहा।

वे घर की ओर चल दिए। उनका नौकर पीछे-पीछे जाने लगा। देखा, वे पार्क की कोलतार की सड़क पर पैदल चले जा रहे हैं। उसके बाद पार्क से बाहर जाने के लिए लोहे का फाटक है।

उस फाटक से बाहर जाने के बाद वे बाईं ओर मुड़े और सामने के बहुत-से मकानों में से एक मकान के सदर दरवाज़े के पास जाकर अन्दर की ओर चले गए।

उनके पीछे-पीछे उनका नौकर भी अन्दर चला गया।

केशव बाबू के जाने के बाद भी मैं बहुत देर तक सोचता रहा। जिनके पास इतने रुपये-पैसे हैं, जो इतनी सम्पत्ति के मालिक हैं, उन्हें ऐसी कौन-सी अशांति हो सकती है? फिर यह छोटे बाबू कौन हैं? वासव नाम सुनने में आया था। वासव कौन है? उनका लड़का घर आकर शोर-गुल मचा रहा है?

मगर दीदी जी? दीदी जी का मतलब? केशव बाबू की बहन? अगर केशव बाबू की बहन ही हो तो उसकी क्या अब तक शादी नहीं हुई है? वह अविवाहिता है?

एकाएक मुझे लगा कि मैं यह सब क्यों सोच रहा हूं? केशव बाबू मेरे कौन होते हैं? कुछ दिनों और कुछ घंटों का ही परिचय है, सो भी बाहर ही बाहर। फिर उनके प्रति इतनी उत्सुकता क्यों? थोड़ी देर बाद मैं उठकर खड़ा हो गया और दूसरे-दूसरे दिनों की तरह घर की ओर चल दिया।

७

यही है शुरुआत, यानी आरम्भ!

साहित्य के इतिहास को देखने पर मुझे इस बात का पता चला है कि…

उपन्यास की शुरुआत एक ऐसे ही छोटे विन्दु से होती है। मेरे वहुत-से कहानी-उपन्यासों की शुरुआत इसी तरह के छोटे विन्दु से होती है।

शुरुआत यद्यपि एक छोटे विन्दु से होती है लेकिन अन्ततः वह रचना पल्लवित-पुष्पित होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जाती है। लोगों ने मेरे उपन्यासों को पढ़ा है, अव भी पढ़ते हैं। मेरा उपन्यास आकार में जितना ही मोटा होता है, लोग उसे उतना ही ज़्यादा पसन्द करते हैं। 'पसन्द करते हैं' का मतलव यह है कि वे चाहते हैं कि उनके आनन्द का सिलसिला ज़्यादा-से-ज़्यादा दिनों तक चलता रहे।

परन्तु मेरी सामर्थ्य की भी एक सीमा है। न केवल मेरी सामर्थ्य की ही, पाठकों के आनन्द की भी कोई-न-कोई सीमा है। मिठाई में कितनी ही मिठास क्यों न हो, मगर उसका भी एक परिमाण होता है। वह परिमाण कहां है, उसकी क्या सीमाएं होनी चाहिए, यह वात लेखक के लिए जानना ज़रूरी है।

सूर्य आकाश में पूरव की दिशा में उगता है लेकिन उसकी सीमा पश्चिम दिगंत में जाते ही समाप्त हो जाती है। वहां पहुंचते ही उसके अस्त होने का समय आ जाता है। दिन-भर पूरे आकाश की परिक्रमा करने के वाद ही उसके कर्त्तव्य की इतिश्री होती है।

यह कहानी एक सामयिक पत्रिका के एक ही अंक में पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई थी। पत्र-पत्रिका में भी एक सीमावद्ध स्थान हुआ करता है। और न केवल सीमावद्ध स्थान, वल्कि एक निर्दिष्ट तिथि और क्षण भी निश्चित रहता है। उसी दायरे में मुझे केशव वावू की कहानी समाप्त करनी थी—चाहे वह कहानी पूरे तौर पर समाप्त हो, चाहे न हो। पाठकों को चाहे अच्छी लगे, चाहे न लगे।

यह कहना मेरे लिए कोई ज़रूरी नहीं होता, अगर यह कहानी किसी पत्रिका में धारावाही प्रकाशित होती। चूंकि यह पूरा उपन्यास है, विज्ञापन में इसे पूरे उपन्यास के तौर पर ही प्रचारित किया जाएगा। पाठक इसी उम्मीद में पत्रिका खरीदेंगे कि उन्हें सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ने को मिल रहा है। मेरी ज़िम्मेदारी कितनी कठिन है, आप इसका अनुमान सहज ही लगा सकते हैं।

खैर, केशव वावू की कहानी अव फिर से शुरू कर रहा हूं। दूसरे दिन मैं

फिर पार्क गया। उस बेंच पर बहुत देर तक बैठा रहा। मगर केशव बाबू आए ही नहीं।

निराश होकर मैं घर लौट आया।

उसके दूसरे दिन भी मैं पार्क में जाकर हाजिर हुआ। उस मकान की ओर एकटक से ताकता रहा, निर्धारित बेंच पर काफी देर तक बैठकर प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन उस दिन भी केशव बाबू के दर्शन प्राप्त न हुए।

इसी तरह जब सात दिन यों ही बीत गए तो मैं अधीर हो उठा। मुझ में एक भय समा गया। संदेह होने लगा। संकोच ने घर दबाया।

और एक दिन सचमुच मेरा धैर्य मेरे वश में नहीं रहा।

उस मकान को अपना लक्ष्य बनाकर मैं एक-एक पग आगे बढ़ता गया।

जाकर क्या कहूंगा, मन-ही-मन इसकी कल्पना करने लगा। बिना जान-पहचान के किसी के घर के अन्दर चला जाना अशिष्टता कहलाता है।

अगर वे मेरा स्वागत नहीं करें ? अगर नौकर भेजकर कहला दें कि अभी मुलाकात नहीं हो सकेगी, मेरे पास वक्त नहीं है, तो ?

लेकिन सोचा, मैं किसी स्वार्थवश नहीं जा रहा हूं। मैं उनसे भीख मांगने नहीं जा रहा हूं। यह तो सौजन्यसूचक साक्षात्कार मात्र है।

सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाते ही नौकर ने आकर दरवाजा खोला।

"केशव बाबू हैं ?" मैंने पूछा।

उसने मेरी ओर ग़ौर से देखा। शायद पहचान गया।

"बाबू की तबीयत खराब है, बीमार पड़ गए हैं।"

मैं एक क्षण अवाक् रह गया। इस उम्र में ज्वर आना ठीक नहीं।

मैंने पूछा, "कब से ज्वर आ रहा है ?"

"मालिक सात दिनों से बुखार में पड़े हैं।" उसने बताया।

इसके बाद क्या कहूं, यही सोच रहा था, तभी पता नहीं, उसने क्या सोचकर कहा, "जाकर मालिक को खबर पहुंचा आऊं !"

मैं बोला, "अगर तुम्हारे मालिक को कोई असुविधा न हो तो खबर पहुंचा दो।"

"फिर आप थोड़ी देर बैठ जाइए।"

यह कहकर वह मुझे कमरे में बैठाकर अन्दर चला गया।

थोड़ी ही देर के वाद वापस आकर उसने मुझसे कहा, "आइए"...

मैं उसके पीछे-पीछे जाने लगा। कमरे से वाहर निकलते ही घिरा हुआ वरामदा है। वरामदे की वगल में वाई ओर ऊपर जाने की सीढ़ी। मामूली सीमेण्ट की सीढ़ी। न उसमें कोई कारीगरी है, न कोई खूवसूरती। लगा, यह सीढ़ी कभी धोई-पोंछी नहीं जाती है।

सीढ़ियां तयकर दोमंज़िले पर पहुंचा। उसके वाद एक वरामदा तय कर आखिरी छोर के कमरे में पहुंचा। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि तमाम मकान में महिला तो दूर की वात, किसी आदमी का चिह्न तक नहीं है।

सोचा, किसी दूसरे कमरे में कोई-न-कोई होगा ही।

केशव वावू जिस कमरे में लेटे थे, नौकर मुझे उसी कमरे में ले गया। कमरे में केशव वावू विस्तर पर पीठ के वल लेटे थे।

लगा, मुझ पर नज़र पड़ते ही वे कुछ संकुचित हो उठे हैं। "आइए, आइए, "उन्होंने कहा, "यह खुशी की वात है कि आप मेरी खोज-खवर लेने आए हैं। जानते हैं न, आजकल दुनिया में कोई किसी का नहीं होता।"...

मैं वोला, "आपको कई दिनों से न देखकर मैं चिन्ता में पड़ गया था..."

केशव वावू वोले, "आपने वहुत ही अच्छा किया। दिन-भर मैं अकेला ही पड़ा रहता हूं। लगता है, कल से वुखार थोड़ा कम रहा है।"

"एकाएक वुखार कैसे आ गया?" मैंने पूछा, "सरदी-वरदी लग गई थी क्या?"

केशव वावू की आवाज़ में भारीपन उतर आया। वे वोले, "सरदी-वरदी नहीं लगी है, उम्र हो गई है, अव तो मौत ही आए तो अच्छा। अव जीने की कोई ख्वाहिश नहीं रही।"

उसके वाद पता नहीं क्या सोचकर पूछा, "तारक कहाँ गया?"

फिर वे पुकारने लगे, "तारक, ओ तारक..."

नौकर का नाम तारक है। वह इस वीच कमरे से निकलकर चला गया था। केशव वावू की पुकार सुनकर वह दुवारा कमरे के अन्दर आया।

उन्होंने तोशक के नीचे से रुपया निकाला। तारक की ओर रुपया वढ़ाकर वोले, "अरे, वावू के लिए कुछ खाने की चीज़ ले आ..."

"नहीं, यह नहीं हो सकता," मैंने कहा, "अगर मुझे यह मालूम रहता तो

मैं यहाँ नहीं आता। मेरे लिए खाने की चीज़ लाना ज़रूरी नहीं है। अगर खाने की चीज़ मंगाइएगा तो मैं अभी उठकर चला जाऊंगा।"

केशव बाबू सुनने को तैयार नहीं थे, मैं भी मानने को तैयार नहीं था। वे बोले, "ठीक है, आप जब इतना नाराज़ हो रहे हैं तो मैं खाने की चीज़ें नहीं मंगाऊंगा।"

यह कहकर उन्होंने रुपये को फिर से तोशक के नीचे रख दिया।

मैंने चैन की सांस ली।

मैं बोला, "आप अगर इस तरह लौकिकता निभाएंगे तो मैं आपके पास नहीं आऊंगा, केशव बाबू।"

केशव बाबू बोले, "आप आज पहले-पहल आए हैं, इसी से मैं तनिक लौकिकता का निर्वाह करने जा रहा था, दरअसल इसे लौकिकता नहीं कहा जा सकता। मेरा यह हमेशा का नियम रहा है कि घर पर आने पर मैं किसी को बिना खिलाए नहीं छोड़ता। लेकिन वक्त बदल गया है। कैसा वक्त था और अब कैसा आ गया। देखते-देखते ही बहुत-कुछ बदल गया। हालांकि जब मेरी पत्नी जीवित थी···"

कहते-कहते वे रुक गए।

शायद केशव बाबू को व्यतीत की बातें याद हो आईं। ज़्यादा उम्र हो जाने पर सभी के साथ ऐसा होता है।

मैं बोला, "मैं बल्कि किसी दूसरे दिन आकर खाना खा लूंगा, आप पहले अच्छे हो जाएं। आज ही तो कोई आखिरी दिन नहीं है।"

मैं उठने-उठने को था। अचानक एक कांड घटित हो गया।

एक महिला कमरे के अन्दर आई। उसके चेहरे पर बेहद क्रोध तैर रहा था।

महिला का रूप रणचंडी जैसा था। कमरे के अन्दर आते ही बोली, "बाबूजी, आपने तारक को कितने रुपए दिए हैं?"

केशव बाबू इस घटना से जैसे संकुचित हो उठे। खास तौर से मेरे-जैसे एक अजनबी के सामने अपनी लड़की का कमरे के अन्दर आकर इस तरह बोलना उन्हें अच्छा नहीं लगा। फिर भी अपनी क्रोध उन्होंने ~~प्रकट~~ होने दी।

पूछा, "क्यों बेटा?"

महिला बोली, "मैंने आपसे बार-बार कहा है कि उसे घर से निकाल दें। फिर भी आप मेरी बात नहीं मानते हैं। जानते हैं, वह चोर है! बाज़ार करने जाता है तो आपका पैसा चुराता है।"

केशव बाबू बोले, "तुम बेटा, इतना चिल्ला क्यों रही हो? मेरी तबीयत अभी खराब है, अच्छा हो लूं तो ये सब बातें सुनूंगा। अभी तुम जाओ। देख रही हो न, मैं अभी इनसे बातचीत कर रहा हूं।"

महिला बोली, "आपको उसे अभी तुरन्त निकालना होगा। या तो वह इस घर में रहेगा या मैं। नहीं तो मैं आपकी गृहस्थी चलाने से बाज़ आई, सब-कुछ बरबाद हो जाए, मैं किसी चीज़ पर निगरानी नहीं रखूंगी..."

केशव बाबू के चेहरे पर दयनीयता की छाया मंडराने लगी।

"दो दिन के लिए धीरज धरो बेटा," उन्होंने कहा, "दो दिन के बाद ही पथ्य लेना है, तब थोड़ा-बहुत स्वस्थ होकर इसका फैसला करूंगा..."

"आपसे फैसला हो चुका। आपने तूल दे-देकर नौकर को सर पर चढ़ा लिया है, वह मेरी परवा ही नहीं करता; मैं हिसाब मांगती हूं तो कहता है, मालिक को हिसाब दूंगा। उसकी यह हिम्मत! नौकर है तो नौकर की तरह रहे, सो नहीं, मुझे आंखें दिखाएगा। मैं जैसे कोई नहीं, मालिक ही सब-कुछ हैं।"

अंत में ऊबकर केशव बाबू ने कहा, "अच्छा, तुम तारक को मेरे पास भेज दो, मैं उसे डांटता हूं। कह दूंगा कि अब से वह सारा हिसाब तुम्हें दिया करे।"

महिला चली गई। शायद तारक को बुलाकर लाने ही गई थी।

इस मौके से लाभ उठाकर मैंने कहा, "अच्छा, मैं अब चलूं, केशव बाबू।"

केशव बाबू भी इस घटना से कुछ-कुछ लज्जा का अनुभव कर रहे थे। वे बोले, "जा रहे हैं?"

"हां, चलूं, अभी आपकी सेहत ठीक नहीं है, बातचीत करने में आपको तकलीफ हो रही है।"

असल में केशव बाबू की पारिवारिक गोपनीयता के बीच अपनी उपस्थिति मुझे खुद ही असहनीय लग रही थी। मैं बिना कुछ और बोले कुरसी छोड़कर

उठने लगा। लेकिन उन्होंने कहा, "बैठिए, आपने जब कि आने का कष्ट किया है तो थोड़ी देर और बैठ जाइए। देखते जाइए कि मैं क्या सुखी जी रहा हूं, क्यों मैं पार्क जाकर एकांत में वक्त गुज़ारता हूं..."

तभी तारक कमरे के अन्दर आकर अपराधी की तरह खड़ा हो गया।

"मुझे आपने बुला भेजा है बड़े मालिक? दीदी जी ने कहा..."

केशव बाबू बोले, "तू दीदी जी से क्यों झगड़ता है तारक? तू मुझे आराम से मरने भी नहीं देगा? तुम लोग सभी मिलजुल कर इस बुढ़ापे में परेशान करके मारना चाहते हो? दीदीजी जो कहती हैं, तू उस पर ध्यान क्यों नहीं देता?"

तारक ने कहा, "आप तो सिर्फ मेरा ही दोष देखते हैं बड़े मालिक। आप से रुपया लेकर मैं बाज़ार जाता था और लौटकर आपको हिसाब दे जाता था। जितना रुपया-पैसा बचता था, आपको लौटा देता था। मगर आपने ही तो कहा था कि दीदीजी को हिसाब समझा दिया करो।"

"सो तो ठीक ही है। लेकिन दीदी जी से झगड़ा-टंटा क्यों करता है? ठीक से बाज़ार कर और ठीक से हिसाब दे दिया कर—बस, कोई झंझट ही नहीं। इसमें झगड़ने की कौन-सी बात है?"

तारक ने कहा, "झगड़ा मैं नहीं, दीदीजी करती हैं। आपको जब हिसाब देता था तो कभी कोई गड़बड़ी हुई थी?"

केशव बाबू संभवत: इस बात का उत्तर देने जा रहे थे, पर उसके पहले ही केशव बाबू की लड़की कमरे के अन्दर चली आई। उसका चेहरा पहले की तरह ही रणचंडी-जैसा था।

कमरे के अन्दर आते ही तारक से बोली, "अरे, यह बात! झगड़ा मैं करती हूं? तू पैसा चोरी करेगा और मैं कुछ कहूं तो झगड़ा हो गया? तेरी यह हिम्मत! अभी इस घर से निकल जा, अभी तुरन्त..."

केशव बाबू अब चुप न रह सके, उनके मुंह से एक आह बाहर निकल आई।

"उफ, तुम लोग चुप रहो न। ज़रा आहिस्ता-आहिस्ता बोलो, मेरी तबीयत खराब है। तुम लोग मुझे बगैर मारे नहीं छोड़ोगे।"

केशव बाबू के इस पारिवारिक झगड़े के बीच मैं एक मौन श्रोता के अति-

रिक्त हो ही क्या सकता था ? लेकिन यह स्थिति हम दोनों के लिए चिन्तनीय थी।

अब मैं उठकर खड़ा हो गया।

उस समय मेरी ओर ध्यान देने के लिए केशव बाबू के पास वक्त नहीं था। लड़की की ओर देखते हुए वे बोले, "निर्मला, तारक को भगा देने से ही तुम्हें चैन मिले तो मैं यही करूंगा, मैं उसे भगा दूंगा......

निर्मला बोली "क्यों भगाइएगा ? वह ठहरा आपका लाड़ला नौकर। वह रहे, मुझे ही भगा देने से आपको चैन मिलेगा, इसलिए मैं ही चली जाती हूं। आप अपने नौकर को लेकर घर-गृहस्थी चलाइए। लीजिए, यह रही आपके भंडारघर की चाभी..."

और आंचल से चाभी का गुच्छा खोलकर झन से बिस्तर पर पटक दिया। उसके बाद एक भी शब्द बगैर बोले कमरे से बाहर चली गई।

केशव बाबू पुकारने लगे, "अरी ओ निर्मला, सुनो, सुनती जाओ, ओ निर्मला... ..."

निर्मला ने जवाब नहीं दिया। मानो उसने पिता की आवाज़ सुनी ही नहीं।

तारक उसी तरह चुपचाप खड़ा था। केशव बाबू अपना गुस्सा तारक पर उतारने लगे।

"तू क्यों खड़ा है, तू भी निकल जा..."

तारक फिर भी उसी स्थान पर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा।

केशव बाबू ने कहा, "तू खड़ा है ? जा, मेरे सामने से चला जा, निकल जा यहां से..."

"आपको अभी दवा देनी है, दवा दे लूं तो फिर मैं चला जाऊंगा। मैं नहीं पिला जाऊंगा तो आप क्या अपने-आप पी सकेंगे ?"

"दवा कहां है ? कहां है दवा ? देखूं !"

"वहीं, आपके सामने ही तो है।"

तारक ने केशव बाबू के बिस्तर के पास तिपाई पर रखी दवा की बोतलों की ओर इशारा किया।

केशव बाबू ने अपने दुर्बल हाथों से उन्हें ठेलकर नीचे गिरा दिया। नीचे गिरते ही बोतलें टूटकर चूर-चूर हो गईं।

केशव बाबू ने हांफते हुए कहा, "जाए, सब टूट-फूटकर चूर-चूर हो जाए, अब मुझे दवा की जरूरत नहीं, अब जीने की जरूरत नहीं, मुझे किसी की भी जरूरत नहीं, मैं बिना घर-द्वार के भी मरूंगा तो यही अच्छा, मगर किसी का चेहरा नहीं देखूंगा…"

यह कहकर उन्होंने निराशा और थकान से जड़ होकर आखें बन्द कर लीं और पीठ के बल लेटे-लेटे अपने-आपको शांत करने की कोशिश करने लगे।

केशव बाबू के घर में मैं एक ऐसा व्यक्ति था जिसका इन तीनों व्यक्तियों से भी कोई संबंध न था। एकाएक यह परिस्थिति मुझे असहनीय-जैसी लगने लगी। "चलूं, केशव बाबू।" मैंने कहा।

मानो, केशव बाबू को मेरी मौजूदगी का अहसास हुआ हो। मेरी बातें सुनकर उन्होंने आखें खोलीं।

"मेरी यह हालत तो आप अपनी आंखों से देख रहे हैं, इसके बाद अगर आप कभी आएंगे तो हो सकता है, पता चले कि मैं इस दुनिया में नहीं रहा। अभी मैं छिहत्तर साल का हूं, फिर भी भगवान मुझे इस दुनिया से क्यों नहीं उठा लेता है!"

केशव बाबू की आंखें छलछला आईं।

मैं अब वहां रुका नहीं। सीढ़ियां उतरने लगा। तारक रास्ता दिखाता हुआ मुझे सदर फाटक तक पहुंचा गया।

मैं सड़क पर पहुंचूं कि इसके पहले ही तारक ने कहा, "फिर आइएगा मालिक। मेरे मालिक के पास कोई नहीं आता, आपके आने से मालिक को थोड़ी शांति मिलती है।"

तारक की बातें सुनकर मैं अवाक् हो गया।

मैंने कहा, "मैं आऊंगा, मगर तुम? तुम तो अब रहोगे नहीं। तुम्हारी नौकरी आज छूट गई न?"

तारक हंस दिया। वह हंसी आत्मतृप्ति की हंसी थी।

"मैं? आप मेरे बारे में कह रहे हैं? इसके पहले भी मेरी नौकरी छूट चुकी है। इस मकान में मैं न रहूंगा तो कैसे चलेगा?"

तारक की बातों ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया।

"मालिक में इतनी हिम्मत है कि मुझे भुला दें ? मैं न रहूंगा तो मालिक मौत के मुंह में समा जाएंगे। या मालिक के भाई आकर जो-सो गाली-गलौज करेंगे, मारेंगे, शोर-शराबा मचाएंगे, कुरसी-मेज़ तोड़ डालेंगे, रुपए-पैसे की मांग करेंगे..."

"भाई ? भाई का मतलब ?"

तारक बोला, "छोटे बाबू, मालिक के छोटे भाई।"

"और यह दीदीजी ? दीदीजी की मांग में तो सिंदूर देखा। वह अपने बाप की बीमारी की खबर सुनकर मायके आई है ?"

एकाएक ऊपर से केशव बाबू की आवाज़ आई।

तारक का ध्यान उस ओर खिंच गया।

वह बोला, "बड़े बाबू बुला रहे हैं, मैं चलूं। दवा देने का वक्त हो चुका है।"

"तुम्हारे बड़े बाबू ने दवा की तमाम बोतलें तोड़ डाली हैं, अब दवा कहां से लाओगे ?" मैंने पूछा।

तारक बोला, "अब उस कागज़ को लेकर दुकान जाऊंगा जिसमें दवा का नाम लिखा है। दुकान में फिर से दवा खरीदनी पड़ेगी।"

अन्दर से दुबारा उसी तरह की आवाज़ आई, "तारक, ओ तारक !" तारक अब वहां रुका नहीं, सदर दरवाज़ा बंद कर अन्दर चला गया।

मैं बहुत देर तक हतप्रभ-सा मकान की ओर ताकता रहा। बाहर से कुछ समझ में नहीं आता है। पार्क के चारों तरफ के दूसरे-दूसरे मकानों की तरह यह मकान भी साफ-सुथरा और एकांत है—और-और मकानों की तरह ही बाहर से निस्तब्ध। लेकिन किसे पता है कि उसके अन्दर इतने दोष, इतना कोलाहल, इतना कलंक है। यही सब सोचते-सोचते उस दिन मैं अपने घर की ओर चल दिया।

८

केशव बाबू का यह जीवन आजकल के संदर्भ में केशव बाबू का ही जीवन

नहीं है, मेरा, आपका, हर किसी का जीवन आज के केशव बाबू के जीवन-जैसा ही है। मैं खुद कितने ही परिवारों से हिलमिल कर उनके अंग-जैसा हो चुका हूं। कितने ही करोड़पति, कितने ही गरीबों की गृहस्थी में अपने-आपको एकाकार कर चुका हूं। सब कुछ देखने-सुनने के बाद मुझे यही लगा है कि सभी परिवार एक ही जैसे हैं। शांति का यदि कहीं वास हो सकता है तो वह किसी के मन के ही भीतर हो सकता है। अपने मन को शान्त किए बिना इस संसार में कहीं भी संवेदना प्राप्त नहीं हो सकती है।

उस दिन केशव बाबू के विषय में मुझे उतना ही पता चला। अधिक जानकारी हासिल कर सकूं, इसका कोई उपाय न था। एक तो मुझसे बहुत कम जान-पहचान है, फिर बिना बुलाए रोज़-रोज़ उन्हें देखने के लिए जाना मुझे अशोभनीय-जैसा लगा। वे सोचेंगे, मैं उनके निजी मामलों के प्रति उत्सुकता प्रकट कर रहा हूं। ऐसा करना सचमुच शोभनीय नहीं है।

दूसरी बात है, वे घर में अकेले नहीं हैं। हालांकि वे घर के मालिक हैं, फिर भी वहां उनकी लड़की है, सगा भाई है। वे लोग मेरे विषय में क्या सोचेंगे!

मेरी धारणा थी कि दो-चार दिनों के बाद ही वे बीमारी से अच्छे हो जाएंगे। तब हो सकता है कि वे पार्क में आकर अपनी निर्धारित बेंच पर बैठें। तभी उनसे बातचीत होगी।

चहलकदमी के लिए पार्क जाना मेरे लिए रोजमर्रा का काम है। केशव बाबू चाहे पार्क में आएं या नहीं आएं, अपनी सेहत के लिए घूमना-फिरना मेरे लिए अनिवार्य है। यों केशव बाबू से मुलाकात होना एक संयोग ही था।

उन्हीं केशव बाबू से मुलाकात करने के लिए उस दिन के बाद से मैं रोज़ पार्क में जाकर बैठने लगा। मैं उसी खाली बेंच पर जाकर बैठता था।

किसी बूढ़े पर आंखें जातीं तो सोचता, केशव बाबू आ रहे हैं। अंधेरे में ठीक-ठीक पता नहीं चलता था।

लेकिन उस आदमी के निकट आते ही मुझे अपनी गलती का अहसास होता था।

इसी प्रकार कितने दिन गुज़र गए, इसकी कोई गिनती नहीं। अंततः एक दिन मेरी तबीयत खराब हो गई। यों बीमारी मामूली ही थी। यों ज्यादा दिनों तक तकलीफ झेलना नहीं पड़ी, मगर घर पर ही रहना पड़ा।

एक दिन मैं घर पर अपने कमरे में लेटा था। शाम होने को थी। पुस्तकों को पढ़ा, दवा खाई, सोया; पर वक्त गुज़रने का नाम ही नहीं ले रहा था। तभी सूचना मिली कि एक बूढ़ा आदमी मुझसे मिलने आया है।

बूढ़ा आदमी ! कौन बूढ़ा आदमी है जो मुझसे मिलने आया है !

मैंने अपने लड़के से कहा, "नाम पूछकर आओ।"

यानी अगर कोई अन्तरंग व्यक्ति होगा तो उसे अपने शयन-कक्ष में बुला लूंगा। और अगर ऐसा न हुआ तो उसे सूचना भेज दी जाएगी कि मैं अस्वस्थ हूं, अभी मुझसे मुलाकात नहीं हो सकेगी। क्योंकि मेरे लिए दोमंज़िले से उतरकर एकमंज़िले में जाना असंभव है।

लेकिन जब यह पता चला कि बूढ़ा आदमी और कोई नहीं, बल्कि केशव बाबू हैं—केशवचन्द्र बन्द्योपाध्याय—तो मैंने कहा, "उन्हें तुरन्त ऊपर ले आओ।"

केशव बाबू आए। साथ में तारक था। मैं उठकर बैठने जा रहा था। केशव बाबू ने मुझे रोका।

"आप उठिए मत।" उन्होंने कहा।

"आपने इस गरीब के घर आने का कष्ट किया है—मैं ठहरा एक गरीब लेखक, आपका कैसे स्वागत करूं, यही सोच रहा हूं।"

केशव बाबू हंस पड़े। लेकिन वह हंसी हंसी-जैसी नहीं थी, बल्कि जैसे कोई अभिमान हो। एक किस्म की रुलाई उस हंसी में उभर आई थी।

"गरीब"? वे बोले, "पैसे की कमी होने से ही कोई गरीब होता है विमल बाबू ? आप क्या कह रहे हैं ? मैं भी गरीब हूं, आपसे ज़्यादा गरीब। मेरा उतना बड़ा मकान देखकर आप सोच रहे हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं।"

थोड़ी देर रुकने के बाद वे फिर बोले, "आपको मालूम नहीं है, इसीलिए आप ऐसा कह रहे हैं। मेरा वह मकान मोर्टगेज है—यानी गिरवी रख दिया है।" यह कहकर वे रुके। हो सकता है, यह बात कहते ही उनका गला रुंध गया।

मैंने अवान्तर प्रसंग छेड़ दिया।

"मेरे मकान का आपको कैसे पता चला ?" मैंने पूछा।

केशव बाबू ने अपने पास खड़े तारक की ओर इशारा करते हुए कहा,

"तारक ने पता लगाया है। मैंने उसे ढूंढ़ने के लिए भेजा था।"

तारक बोला, "तीन दिनों से आपके मकान का पता लगा रहा था। किसी को भी मालूम नहीं था। अंत में जब एक नाई के सैलून में पूछताछ की तो उसी ने पता बताया। आप उसके सैलून में बाल कटाते हैं।"

केशव बाबू बोले, "कलकत्ता, साहब, कितनी खराब जगह है, यहां अगल-बगल मकान हैं लेकिन हमें किसी के बारे में कोई खबर मालूम नहीं है। हालांकि हर किसी का कहना है कि हम आदमी हैं। हम लोग अपने-आपको आदमी कह-कर गर्व करते हैं।"

मैं बोला, "आप कमजोरी की हालत में क्यों आए?"

केशव बाबू ने जवाब दिया, "क्या करूं, अपने मकान में ज्यादा देर तक टिक नहीं पाता हूं। घर मेरे लिए बियाबान है, यही वजह है कि पार्क की उस बेंच पर अकेला बैठा रहता था। मगर बगैर किसी से बातचीत किए वक्त कैसे गुजारा जाए? यह तारक ही है जिससे दो-चार बातें कर लिया करता हूं। मगर वो-वो भी अब वैसा हो गया है, वह सिर्फ निर्मला से झगड़ता रहता है। मैं उससे जब जाने को कहता हूं, वह कहता है: मैं चला जाऊंगा तो आपकी देख-रेख कौन करेगा? मैं कहता हूं: मेरी देखभाल की जरूरत ही क्या है? मेरी उम्र छिहत्तर साल की हो गई, अब जिन्दा रहना ही पाप है। जब तक जिन्दा रहूंगा तब तक अशांति का सामना करना पड़ेगा। बचपन से ही अशांति का सामना करना पड़ रहा है, आदमी और कितना अधिक अशांति झेल सकता है? अशांति सहने की भी तो कोई-न-कोई सीमा होती है..."

एकाएक तारक ने बीच में ही टोक दिया, "अब चलिए, बड़े बाबू। अब छोटे बाबू आ चले..."

छोटे बाबू का नाम सुनते ही केशव बाबू का चेहरा बुझ गया।

"छोटे बाबू को आने दो। मैं अभी नहीं जाऊंगा।" उन्होंने कहा।

तारक बोला, "मगर छोटे बाबू ने मुझसे कहा था कि आज वे आएंगे, उन्हें पैसा चाहिए, आपको याद दिलाने के लिए मुझसे कह गए थे।"

केशव बाबू अपने आप बुदबुदाने लगे, "सिर्फ पैसा और पैसा! इसके सिवा छोटे बाबू को कोई काम नहीं, पैसे की जरूरत पड़ने पर ही मेरे पास आएंगे। मेरे पास कोई पैसे का पेड़ है? तू उससे कह नहीं सकता कि मेरे पास पैसा

एक दिन मैं घर पर अपने कमरे में लेटा था। शाम होने को थी। पुस्तकों को पढ़ा, दवा खाई, सोया, पर वक्त गुज़रने का नाम ही नहीं ले रहा था। तभी सूचना मिली कि एक वूढ़ा आदमी मुझसे मिलने आया है।

वूढ़ा आदमी ! कौन वूढ़ा आदमी है जो मुझसे मिलने आया है !

मैंने अपने लड़के से कहा, "नाम पूछकर आओ।"

यानी अगर कोई अन्तरंग व्यक्ति होगा तो उसे अपने शयन-कक्ष में वुला लूंगा। और अगर ऐसा न हुआ तो उसे सूचना भेज दी जाएगी कि मैं अस्वस्थ हूं, अभी मुझसे मुलाकात नहीं हो सकेगी। क्योंकि मेरे लिए दोमंज़िले से उतरकर एकमंज़िले में जाना असंभव है।

लेकिन जव यह पता चला कि वूढ़ा आदमी और कोई नहीं, वल्कि केशव वावू हैं—केशवचन्द्र वन्द्योपाध्याय—तो मैंने कहा, "उन्हें तुरन्त ऊपर ले आओ।"

केशव वावू आए। साथ में तारक था। मैं उठकर वैठने जा रहा था। केशव वावू ने मुझे रोका।

"आप उठिए मत।" उन्होंने कहा।

"आपने इस गरीव के घर आने का कष्ट किया है—मैं ठहरा एक गरीव लेखक, आपका कैसे स्वागत करूं, यही सोच रहा हूं।"

केशव वावू हंस पड़े। लेकिन वह हंसी हंसी-जैसी नहीं थी, वल्कि जैसे कोई अभिमान हो। एक किस्म की रुलाई उस हंसी में उभर आई थी।

"गरीव" ? वे वोले, "पैसे की कमी होने से ही कोई गरीव होता है विमल वावू ? आप क्या कह रहे हैं ? मैं भी गरीव हूं, आपसे ज़्यादा गरीव। मेरा उतना वड़ा मकान देखकर आप सोच रहे हैं कि मैं वड़ा आदमी हूं।"

थोड़ी देर रुकने के वाद वे फिर वोले, "आपको मालूम नहीं है, इसीलिए आप ऐसा कह रहे हैं। मेरा वह मकान मोर्टगेज है—यानी गिरवी रख दिया है।" यह कहकर वे रुके। हो सकता है, यह वात कहते ही उनका गला रुंध गया।

मैंने अवान्तर प्रसंग छेड़ दिया।

"मेरे मकान का आपको कैसे पता चला ?" मैंने पूछा।

केशव वावू ने अपने पास खड़े तारक की ओर इशारा करते हुए कहा,

"तारक ने पता लगाया है। मैंने उसे ढूंढ़ने के लिए भेजा था।"

तारक बोला, "तीन दिनों से आपके मकान का पता लगा रहा था। किसी को भी मालूम नहीं था। अंत में जब एक नाई के सैलून में पूछताछ की तो उसी ने पता बताया। आप उसके सैलून में बाल कटाते हैं।"

केशव बाबू बोले, "कलकत्ता, साहब, कितनी खराब जगह है, यहां अगल-बगल मकान हैं लेकिन हमें किसी के बारे में कोई खबर मालूम नहीं है। हालांकि हर किसी का कहना है कि हम आदमी हैं। हम लोग अपने-आपको आदमी कहकर गर्व करते हैं।"

मैं बोला, "आप कमज़ोरी की हालत में क्यों आए ?"

केशव बाबू ने जवाब दिया, "क्या करूं, अपने मकान में ज्यादा देर तक टिक नहीं पाता हूं। घर मेरे लिए बियाबान है, यही वजह है कि पार्क की उस बेंच पर अकेला बैठा रहता था। मगर बगैर किसी से बातचीत किए वक्त कैसे गुज़ारा जाए ? यह तारक ही है जिससे दो-चार बातें कर लिया करता हूं। मगर वो-वो भी अब वैसा हो गया है, वह सिर्फ निर्मला से झगड़ता रहता है। मैं उससे जब जाने को कहता हूं, वह कहता है . मैं चला जाऊंगा तो आपकी देख-रेख कौन करेगा ? · मैं कहता हूं · मेरी देखभाल की ज़रूरत ही क्या है ? मेरी उम्र छिहत्तर साल की हो गई, अब ज़िन्दा रहना ही पाप है। जब तक ज़िन्दा रहूंगा तब तक अशांति का सामना करना पड़ेगा। बचपन से ही अशांति का सामना करना पड़ रहा है, आदमी और कितना अधिक अशांति झेल सकता है ? अशांति सहने की भी तो कोई-न-कोई सीमा होती है…"

एकाएक तारक ने बीच में ही टोक दिया, "अब चलिए बड़े बाबू। अब छोटे बाबू आ चले…"

छोटे बाबू का नाम सुनते ही केशव बाबू का चेहरा बुझ गया।

"छोटे बाबू को आने दो। मैं अभी नहीं जाऊंगा।" उन्होंने कहा।

तारक बोला, "मगर छोटे बाबू ने मुझसे कहा था कि आज वे आएंगे, उन्हें पैसा चाहिए, आपको याद दिलाने के लिए मुझसे कह गए थे।"

केशव बाबू अपने आप बुदबुदाने लगे, "सिर्फ पैसा और पैसा ! इसके सिवा छोटे बाबू को कोई काम नहीं, पैसे की ज़रूरत पड़ने पर ही मेरे पास आएंगे। मेरे पास कोई पैसे का पेड़ है ? तू उससे कह नहीं सकता कि मेरे पास पैसा

नहीं है ? अबकी आए तो कह देना, अब पैसा नहीं मिलेगा। इतना-इतना पैसा देने से भी जिसकी ज़रूरत पूरी नहीं होती, उसका अभाव कभी दूर हो ही नहीं सकता।"

तारक बोला, "मैं तो हर रोज़ यही बात कहता हूं।"

"तो फिर वह क्यों आता है ? तू उसे ठीक से समझा नहीं पाता है। यह मामूली काम भी अगर तुझसे नहीं होता है तो तुझे रखने से फायदा ? तू नौकरी छोड़कर देस चला जा, इससे तेरी भी झंझट दूर होगी और मुझे भी चैन मिलेगा…"

तारक भी वैसा ही है। बोला, "मैं तो चला ही गया था, आपने ही चिट्ठी लिखकर मुझे देस से बुला लिया।"

केशव बाबू को गुस्सा हो आया, "तुझमें यही सबसे बड़ा दोष है, बहुत बहस करता है। तू यहां से चला जा। अब मैं मित्तिर जी का घर पहचान गया हूं, मैं अकेले ही लौट जाऊंगा। यहां खड़े रहकर बड़बड़ाने की ज़रूरत नहीं है।"

तारक बोला, "छोटे बाबू अगर आकर पूछें कि बड़े बाबू कहां हैं, तो मैं क्या बताऊंगा ?"

"कहना कि मैं यहां हूं। यहां आकर डांट-फटकार सुनाने की उसमें हिम्मत नहीं है।"

तारक बोला, "यहां आकर डांट-फटकार न सुनाएं मगर मुझे तो डांटेंगे ज़रूर। और, अगर उस दिन की तरह मेज़-कुरसी, थाली-बरतन तोड़ना शुरू कर दें तो ? तब मैं क्या करूंगा ? तब दीदी जी आपको ही बुला लाने को कहेंगी।"

केशव बाबू ने उत्तर दिया, "तोड़े-फोड़े तो तोड़ने दे, मैं ही क्या कर सकता हूं ? और तोड़ेगा भी तो कितना ? कोई भी चीज़ घर में साबुत हालत में है ? मेरी खाट थी, उसे भी तोड़-फोड़ डाला। अब मैं फर्श पर सोता हूं। अब वह मेरा मकान तोड़ना चाहे तो तोड़ डाले। वही क्यों बाकी बचे ?"

तारक सब सुन रहा था। वह बोला, "मैं चला जाऊंगा तो आप इस अंधेरे में अकेले घर लौट सकेंगे ?"

केशव बाबू बोले, "सकूंगा, जरूर सकूंगा। तू जा तो सही…"

अब मैंने कहा, "नहीं-नहीं, अब आप कष्ट मत करें केशव बाबू, आप घर चले जायें।"

"आप ही बताइए," तारक ने कहा, "एक बार इसी तरह अंधेरे में जा रहे थे कि गिर पड़े, छिहत्तर साल की उम्र हो गई है, अब क्या अकेले रास्ते में पाव-पैदल चलना अच्छा है?"

अब केशव बाबू ने किसी प्रकार की दुविधा प्रकट नहीं की, इच्छा न रहने के बावजूद वे उठकर खड़े हो गए।

"इस तारक के चलते ही मेरे लिए अब जिन्दा रहना मुश्किल है, तारक ही आखिर में मुझे मार डालेगा।" केशव बाबू ने कहा।

मैंने कहा, *"अब आप कहीं ज्यादा आया-जाया मत करें। घूमना-फिरना आपके लिए उचित नहीं है।"*

फिर वे रुके नहीं। तारक उन्हें अपने साथ लिए घर की ओर चल दिया।

६

इसी तरह कई बार भेंट-मुलाकात होते-होते मैं केशव बाबू से अंतरंगता के सूत्र में बंध गया। केशव बाबू से जितनी ही मुलाकातें होती गई, मेरी समझ में यह बात स्पष्ट होती गई कि उनके समान दुखी व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है। वे मन लगाकर नौकरी करते थे। नियमपूर्वक दफ्तर का काम संभालते थे। दफ्तर के काम से उन्होंने कभी जी नहीं चुराया। कभी-कभी दफ्तर से फाइल घर ले आते थे। काफी रात तक जागकर फाइल का काम करते थे।

पत्नी ने बहुत बार मना किया था।

वह कहती, "इतना काम क्यों करते हो? तुम्हारी सेहत खराब हो जाएगी।"

केशव बाबू कहते, "इसे खत्म कर लूं तो फिर जाऊंगा। काम नहीं किए बगैर चल सकता है? इतनी बड़ी गृहस्थी है, लड़की की शादी देनी है, छोटा भाई है। इतना कहां से आएगा?"

पत्नी बड़ी ही सीधी-सादी थी। सचमुच ऐसी ही औरतें लक्ष्मी कही जाती

हैं। केशव बाबू ज़िन्दगी-भर आफिस के कामों में ही व्यस्त रहे। सुबह छह बजे ही उठकर फाइल देखना शुरू कर देते थे, फिर नौ बजते-न-बजते माथे पर दो लोटा पानी ढालकर जल्दी-जल्दी कौर निगलते थे और आफिस की ओर चल देते थे। सीधे आफिस। वह आफिस आजकल के जैसा आफिस न था। उन दिनों ओवर-टाइम का भत्ता नहीं मिलता था। किसी तरह आफिस पहुंचकर अपनी मेज़ पर जो बैठते, तो फिर उन्हें कोई होश ही नहीं रहता था। घर से चार अदद सूखी रोटियां और आलू की सब्ज़ी ले जाते थे, उसे ही खाकर दोपहर की भूख शांत करते थे।

तब मकान नहीं बना था, रुपये-पैसे जमा नहीं कर पाए थे। पत्नी, लड़की, अपने खुद और एक नाबालिग भाई—बस इतने ही जने थे उनके परिवार में।

केशव बाबू हर महीने दफ्तर से पैसा लाकर अपनी पत्नी के हाथ में थमा देते थे। शुरू में उनकी तनखा चालीस रुपये थी। उसमें से मकान-किराये की बाबत दस रुपये निकल जाते थे। बाकी बच जाता था तीस रुपया। उन्हीं तीस रुपयों से एक-एक पैसा बचाकर उनकी पत्नी ने काफी पैसे जमा कर लिए थे।

पत्नी कहती, "मछली वगैरह खाना ज़रूरी नहीं है, दाल और आलू का भुर्ता ही खाकर यह महीना किसी तरह गुज़ार दो, अगले महीने की पहली तारीख में मछली खरीदी जाएगी।"

केशव बाबू दफ्तर संभालते थे और उनकी पत्नी घर।

इसी में लोक-लौकिकता का निर्वाह करते हुए, गृहस्थी का भार संभालते हुए, ज़मीन खरीदना कितना कष्टदायक होता है, यह बात या तो वह स्वयं जानते थे या उनकी पत्नी ही।

यह जो पार्क है और पार्क के चारों ओर बड़ी-बड़ी इमारतें, उन दिनों किसी का नामोनिशान तक न था। चारों तरफ कीचड़ ही कीचड़ था। इस ज़मीन की कीमत इतनी ज्यादा हो जाएगी, उन दिनों किसी ने यह बात कहां सोची थी?

उस तरफ जो लैंसडाउन रोड और हाजरा रोड के मोड़ हैं, वहां से इस तरफ आने में कपड़े को घुटनों तक समेटकर आना पड़ता था। शाम होने के बाद यहां रहना मुश्किल था। उस समय चारों तरफ गहरा अंधेरा फैल जाता

था। एक भी आदमी यहां नज़र तक न आता था। यह वही ज़मीन है।

गृहिणी ने कलकत्ते मे मकान बनाने के ख्याल से खाने और पहनने में कतर-ब्योंत करके एक-एक पैसा जमा किया था।

वह कहती, "भगवान न करे, किराये के मकान में किसी को रहना पड़े।"

किरायेदार होकर कलकत्ते मे रहने का कष्ट उसने भोगा था, इसीलिए वह मकान बनाने के लिए उतनी आग्रहशील थी।

और निर्मला? उसकी शादी देनी है। यह दुश्चिन्ता भी उसके मन में हमेशा बनी रहती थी। उन दिनों लड़की कम उम्र की थी। मगर बच्चे मां की तकलीफ नहीं समझते।

किसी फेरी वाले को रास्ते से गुजरते देखकर निर्मला कहती, "मां, मैं दाल-पूरी खाऊंगी।"

दालपूरी से शुरू करती थी, फिर मूगफली, आलू का दम---कुछ भी उसके ध्यान से हट नहीं पाता था। हर फेरीवाले को वह बुलाकर ले आती थी।

फेरीवाले भी वैसे ही थे। बच्चों को देखते ही चिल्लाना शुरू कर देते थे। उन लोगों के मकान के सामने ही आवाज़ लगाना शुरू कर देते थे; 'मूगफली, आलूदम, घुघनी'···

दिन भर काम करने के बाद ही केशव बाबू राहत की सांस ले पाते थे। बचपन में उन्होंने पढा था: "लिखते पढते जो, वे चढ़ते गाडी-घोड़े पर।" इस बात पर उन्हें पूर्ण आस्था थी।

वासव सगा भाई था। मरने के समय बाप ने कहा था, "अपने भाई की देखरेख करना केशव, उसे योग्य नहीं बना सका, योग्य बनाने का भार तुम्हीं पर छोड़ जाता हूं···"

दुनिया में कौन किसको योग्य बना सकता है? जिसने प्रतिज्ञा की है कि मैं मनुष्य नहीं बनूंगा, उसे मनुष्य बनाने की सामर्थ्य किसमे है?

एक तो दफ्तर मे ही केशव बाबू को जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता था, उस पर घर आने से भी उन्हें शांति नहीं मिलती थी। आते ही वासव के काले कारनामे सुनने को मिलते थे।

गृहिणी कहती, "अपने भाई के कारनामों का है?"

देह का पसीना सूखते-न-सूखते वासव की करतूतें सुननी पड़ती थी।

"आज कौन-सी शरारत की ?"

"यह देखो"…और उसने अलमारी के कांच की ओर इशारा किया।

पूरी अलमारी का कांच तोड़कर चूर-चूर कर दिया था। दो-चार कांच के टुकड़े लकड़ी में जड़े रह गए थे। ऐसी हालत थी कि अगर थोड़ा हिलाया-डुलाया जाए तो अलग होकर नीचे गिर पड़ें।

"किसने तोड़ा ?"

गृहिणी बोली, "तुम्हारे लाड़ले भाई के सिवा कौन तोड़ेगा ? सिनेमा देखने के लिए पैसा मांगा, मैंने नहीं दिया, बस गुस्से में आ गया और मुक्के मार-मारकर पूरे कांच को तोड़ डाला।"

"कहीं उसका हाथ तो नहीं कट गया ?"

गृहिणी बोली, "कैसे बताऊं ? कांच तोड़कर घर से भाग गया है।"

केशव बाबू ने घड़ी की ओर देखा। तब घड़ी में रात के नौ बज रहे थे। अब तक घर से बाहर है, कहां चला गया ?

केशव बाबू दफ्तर से फाइल ले आए थे। सोचा था, रात में बहुत देर तक जगकर सारा काम खत्म कर डालूंगा। लेकिन उस दिन काम में मन नहीं लगा। लड़की ने आकर कहा, "बाबूजी, मां आपको खाने के लिए बुला रही है।"

केशव बाबू ने फाइल से आंखें उठाईं। पूछा, "तुम्हारे चाचाजी लौटे या नहीं ?"

निर्मला तब छोटी थी। गृहस्थी के बारे में उसे कोई ज्ञान न था, अपने पिता के दफ्तर के कामों के महत्त्व के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं थी।

बोली, "जानते हैं बाबूजी, चाचाजी ने आज मां से झगड़ा किया है। मां को मारकर घर से भाग गए हैं। कह गए हैं कि अब इस घर में वापस नहीं आएंगे।"

"यह क्या, तुम्हारी मां ने मुझे तो कुछ बताया नहीं।"

यह कहकर वे फाइल वगैरह रखकर सीधे रसोईघर में गए। उस समय गृहिणी थाल में खाना परोस रही थी। चेहरे पर गंभीरता तैर रही थी।

निकट जाकर बोले, "वासु ने तुम्हें मारा है जी ?"

गृहिणी बोली, "तुमसे कहकर ही क्या होगा ? तुम क्या उसे पीटोगे या खरी-खोटी सुनाओगे ? उसने मुझे पीटा है, इससे तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? उसने तुम्हें तो कुछ किया नहीं ?"

"नहीं-नहीं, गुस्सा क्यों कर रही हो ? क्यों मारा, यही बताओ न···"

गृहिणी तब खाना परोस चुकी थी। दोनों हाथों में पति और लड़की के लिए थाल लिए उठकर खड़ी हुई और बोली, "चलो हटो, रास्ता रोककर खड़े मत रहो। दिन-भर खटने के बाद थोड़ा आराम करूं, इसका भी उपाय नहीं। चलो हटो···"

मानो, वासव ने अलमारी का काच जो तोड़ दिया या भाभी को जो पीट दिया, इसके लिए केशव बाबू ही गुनहगार हैं। खाने बैठे तो पत्नी के चेहरे की ओर देखते हुए बोले, "तुम्हें कहां मारा, बताओ न। मुह में या हाथ में ?"

गृहिणी गुस्से में आकर बोली, "चाहे मुह में मारे या हाथ में, तुम्हें तो नहीं मारा है। तुम अपने दफ्तर का काम लेकर मगन रहो, घर की बातें सोचने की तुम्हें जरूरत ही क्या है ?"

और वह रसोईघर की ओर चली गई।

इतनी देर के बाद जब गृहिणी के चेहरे पर रोशनी पड़ी तो केशव बाबू ने देखा कि उसकी आंखों के नीचे नीला दाग है।

निर्मला ने मा के बदले जवाब दिया, "मा ने सिनेमा देखने के लिए नहीं दिया तो चाचा जी ने आलमारी का काच तोड़ दिया। इस पर मा डांटने लगी।"

"फिर ?"

कम-उम्र होने से क्या होगा, निर्मला तब काफी चालाक-चतुर हो गई थी।

बोली, "चाचा जी मां की ओर दौड़कर आए और मुह पर तमाचे-पर-तमाचे जड़ने लगे। उसके बाद मां जब जमीन पर गिर पड़ी, चाचा जी घर से भाग खड़े हुए।"

उसके बाद लाख चेष्टा करने के बावजूद गृहिणी ने केशव बाबू के एक शब्द का भी उत्तर नहीं दिया। केशव बाबू का न तो दफ्तर का ही काम हो सका और न उनकी आंखों में नींद ही उतरी। उस दिन रात-भर वे जगे रहे। बार-बार उन्हें वासव की बातें ही याद आती रहीं। वह कहां है, उसने क्या खाया, पुलिस उसे पकड़कर ले गई क्या—यह सब सोचते-सोचते ही सुबह हो गई।

रात के पहले पहर में एक बार पत्नी के पास जाकर बोले, "उस जगह जरा टिंचर आइडिन लगा दूं ?"

"चुप रहो, मुझे सोने दो..."

यह कहकर पत्नी ने करवट ली और फिर बिलकुल खामोश हो गई।

इसके बाद भला किसी को नींद आ सकती है ? केशव बाबू ने अधजगे रहकर तमाम रात गुजार दी। लेकिन सोचते रहने के बाद भी उन्हें कोई कूल-किनारा नजर न आया।

एक बार सोचा, मुहल्ले के थाने में जाकर पता लगाऊं। लेकिन वहां के लोगों को ही कौन-सी जानकारी हो सकती है ? हो सकता है वह किसी दोस्त मित्र के घर जाकर रात गुजार रहा हो। लेकिन अगर वह लौटकर घर नहीं आए ?

केशव बाबू का मन भाई के लिए छटपटाने लगा। वह कहां है, किस हालत में है ? गुस्से में कहीं गंगा में जाकर कूद न पड़े। इतना गंवार लड़का है कि उसके द्वारा कुछ भी होना असम्भव नहीं।

खिड़की से आकाश दिखाई पड़ रहा था। अंधेरे में डूबा आकाश आहिस्ता-आहिस्ता नीला होता जा रहा था। अब वे बिछावन पर लेटे नहीं रह सके। बिछावन छोड़कर उठ खड़े हुए। उठकर कमरे के बाहर आते ही उनकी आंखें वासव पर गईं जो दीवार लांघकर चुपचाप घर के अन्दर घुस रहा था। वासव के कूदते ही वे उस पर झपट पड़े और बाएं हाथ से उसका एक हाथ पकड़कर दाहिने हाथ से तड़ातड़ पीटना शुरू कर दिया।

"हरामजादे, तुम फिर घर आएं हो ?"

थप्पड़ जमाते जाते थे और साथ ही चिल्ला-चिल्लाकर गाली-गलौज भी करते जाते थे।

वालु भी वैसा ही था। मार पड़ते ही 'बाप रे, बाप रे' कहकर जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया।

"फिर रोना शुरू किया ? रोते हुए शर्म नहीं आती ?"

मगर वासव बचपन में ही शरम-हया ताक पर रख चुका था। वह आवारा होने के लिए ही पैदा हुआ था, इसलिए उसमें शर्म-हया होना शायद जरूरी

नहीं था। वरना जो अपनी भाभी को थप्पड़-मुक्का मारकर घर से भाग गया था, रात बीतते-न-बीतते उस घर में आता ही क्यों ?

केशव बाबू उस वक्त शायद गुस्से से पागल हो गए थे। वे लगातार घूसा-मुक्का, थप्पड़-तमाचा जमाए जा रहे थे।

"तुम इस मकान में फिर क्यों आए ? बताओ, तुम इस मकान में क्यों आए ?"

वासु भी रोता-कलपता जा रहा था और बेरोक-टोक कह रहा था, "मुझे मार डाला, मार डाला, मेरी हत्या कर डालेगा ···"

केशव बाबू एक ही बात दोहराए जा रहे थे, "मरो, हां मर जाओ, मैं यही चाहता हूं, तुम्हें मरा हुआ देखकर ही मुझे शान्ति मिलेगी, मरो, हां मर जाओ···"

इसी बीच शोर-गुल सुनकर गृहिणी की नींद टूट गई। बाहर आते ही वहां का कांड देखकर अवाक् रह गई। देवर की वैसी हालत देखकर वह अपने आपको रोक नहीं सकी। केशव बाबू के हाथों को जोर से पकड़कर बोली, "क्या कर रहे हो, मर जाएगा !"

उस समय केशव बाबू की देह में जैसे दानव का बल आ गया था।

वे बोले, "तुम मुझे छोड़ दो, आज मैं इसे जान से ही मार डालूंगा, इसकी हत्या कर डालूंगा और थाने में जाकर सारा अपराध कबूल कर लूंगा। हरामज़ादा इतना बड़ा हो गया, फिर भी मेरी नाक में दम कर रहा है। आदमी के सहने की भी कोई सीमा होती है। मुझे छोड़ दो, आज मैं इसे मार ही डालूंगा।"

आखिर में गृहिणी वासु को अपनी बांहों में भरकर एक कोने में ले गई। केशव बाबू उस वक्त आक्रोश से उबल रहे थे और गृहिणी ने डांट-फटकार शुरू कर दी थी।

वह बोली, "गुस्से में आने पर तुम होश में नहीं रहते ? अगर वह मर जाता तो फिर क्या होता ? तब तुम्हारे हाथों में हथकड़ियां पड़ती।"

केशव बाबू ने कहा, "हाथों में हथकड़ी डाली जाती तो अच्छा ही होता। [illegible] मैं चैन की सांस लेता, मुझे हर रोज मृत्यु-यातना नहीं सहनी पड़ती। [illegible] से-ज़्यादा फांसी की सज़ा दी जाती। मुझे फांसी पर चढ़ा दिया जाए [illegible]

है, कम से कम इस यातना से मुक्ति तो मिल जाएगी…"

फिर मन ही मन बुड़बुड़ाने लगे, "एक ओर दफ्तर में साहब की डांट-फटकार। मन लगाकर काम करो। फिर भी चैन नहीं और उस पर घर लौटकर दो घड़ी आराम करूं, इसका भी कोई उपाय नहीं…"

अचानक याद हो आया कि वक्त हो रहा है, उन्हें अभी हाट-बाज़ार करना है और जल्दी-जल्दी दो कौर मुंह में डालकर दफ्तर जाना है।

याद आते ही वे हाथ में झोली थामे बाज़ार की तरफ भागे। दो कौर तो खाना ही है, घर और दफ्तर में चाहे कितनी ही अशान्ति क्यों न रहे, पेट तो मानेगा नहीं। बाज़ार से लौटने पर उन्हें दूसरा ही कांड देखने को मिला।

गृहिणी बोली, "अजी, बासु को क्या हुआ है, जाकर देखो। उसका हाथ-मुंह बेहद सूज गया है।"

"देखूं, कहां…" यह कहकर वह ज्यों ही कमरे के अन्दर गए, बासु को बेहोशी की हालत में पाया। उसके मुंह से खून टपक रहा था। केशव बाबू की पत्नी उसके माथे पर जल की पट्टी रख रही थी। देह छूते ही लगा कि बुखार से सारा शरीर जल रहा है।

पास जाकर केशव बाबू ने धीरे से पुकारा, "बासु, अरे बासु, बहुत तकलीफ हो रही है भैया ?"

बासु के मुंह से उत्तर के तौर पर एक भी शब्द नहीं निकला। केशव बाबू में भय समा गया। उन्हें अभी दफ्तर जाना है और बासु की यह हालत है।

गृहिणी बोली, "मुझे लक्षण अच्छा नहीं लग रहा है। अगर अभी उसका बुखार बढ़ जाए तो ? तुम दफ्तर चले जाओगे तो मैं फिर क्या करूंगी…"

"आज दफ्तर में बहुत काम है।"

गृहिणी बोली, "मान लो किसी दिन मेरी मौत हो जाती है तो ऐसी हालत में तुम दफ्तर जाओगे ? किसी की जान बड़ी है या दफ्तर ?"

"फिर जाकर डाक्टर बुला लाता हूं।"

केशव बाबू उस दिन दफ्तर नहीं जा सके। दफ्तर में फोन करके उन्होंने घर की विपत्ति की सूचना बड़े साहब को दे दी।

उसके बाद डाक्टर आया। खुद दुकान जाकर बासु के लिए दवा खरीद लाए। उस वक्त घर में दूसरा ही कांड मच गया था।

वासु के स्वस्थ होने में एक महीने का अरसा लग गया। उस एक महीने के दरम्यान कितनी बार डाक्टर बुलाए गए, दवा और डाक्टर मे कितने पैसे होम हो गए, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं। उस पर चिन्ता-फ़िक्र, सेवा-सुश्रूषा अलग। कई दिनों तक रात के समय कोई सो तक नहीं सका।

मामूली सिनेमा देखने के लिए सवा रुपये की बात थी। उसके कारण ही केशव बाबू कई दिनों तक दफ्तर नही जा सके, इसके अतिरिक्त घर से पाच सौ रुपये भी निकल गए। झंझटो के बारे में कुछ कहना ही बेकार है।

१०

केशव बाबू के आरम्भिक जीवन की यही कहानी है।

पिता ने दफ्तर में नियुक्त करा दिया था। उन दिनों चालीस रुपये की तनखा से ही वे गृहस्थी का खर्च चलाते थे। और गृहस्थी जो चल रही थी, उसका श्रेय था उनकी पत्नी को। जीवन मे उस तरह की पत्नी मिली थी, इसीलिए उसी रकम से उन दिनो खाना-कपडा, मकान का किराया—सबका खर्च पूरा हो जाता था। हरेक की मागो की पूर्ति करते हुए, लौकिकता का निर्वाह करते हुए, नौकरी भी अच्छी तरह से चला रहे थे।

नौकरी न केवल कर रहे थे, बल्कि नौकरी के दौरान काफी तरक्की भी की थी। बेवजह कभी दफ्तर से गैरहाजिर नही रहते थे, जी-जान से बड़े साहब के आदेशों का पालन करते थे। साहब भी उनके कन्धो पर दफ्तर का काम सौंप कर निश्चिंत-जैसे हो गए थे। लड़की के जन्म के समय किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कहा से जमीन खरीदी गई—यहा तक कि रुपये-पैसों का कैसे इन्तज़ाम किया गया—उन्हें किसी भी बात की जानकारी न रहती थी।

ज़मीन की रजिस्ट्री करानी थी, पर हाथ बिलकुल खाली था। महीने का अन्तिम सप्ताह चल रहा था। चावल और आलू का भुरता खाकर ही पूरा सप्ताह गुज़ार दिया था।

पत्नी कभी-कभी कहती, "मछली खाना जरूरी नहीं है। [illegible] उसके बाद जी-भर मछली खाते रहना।"

निर्मला आना-कानी करती। कहती, "आज मछली नहीं है मां..."

मां कहती, "नहीं है, रोज़-रोज़ मछली होना ज़रूरी नहीं है, बिना मछली के खाया नहीं जाता? जो लोग गरीब हैं, जिनके पास मछली खरीदने के लिए पैसा नहीं है, वे क्या ज़िन्दा नहीं रहते? मारवाड़ी मछली नहीं खाते, इससे क्या उनका पेट नहीं भरता है?"

लेकिन वासु के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ता था। पहली बात तो यह थी कि वासु कब खाएगा, कब घर लौटेगा, इसका कोई ठीक नहीं रहता था।

सुबह ग्यारह बजे उसका स्कूल शुरू होता था। सवेरे ही वह कहां निकल जाता, इसका पता लगाना मुश्किल था। मुहल्ले में अड्डेबाज़ी कर जब वह लौटता तो उस समय घड़ी पौने ग्यारह बजाती थी। तभी वह आकर कहता, "भाभी, खाना दो।"

'खाना दो' कहने से ही क्या तुरन्त खाना आ जाएगा? परिवार की जो गृहिणी होती है उसके कामों का कोई अन्त नहीं रहता। घर पोंछना, कपड़े-लत्तों में साबुन लगाना वगैरह बहुत सारे काम रहते हैं।

इसके अलावा बालीगंज में धीरे-धीरे मकान भी बन रहा था। राजमिस्त्री आता था, बढ़ई आता था। कोई कहता, "एक बोरा और सुर्खी चाहिए या एक गाड़ी बालू और, इसके अलावा दस बोरा सीमेण्ट।"

कहते ही ज़रूरत पूरी करनी है, वरना राजमिस्त्री, हो सकता है, आराम से वक्त गुज़ार दे, तभी अलमारी खोलकर रुपया निकालकर देना पड़ता था।

उस पर हिसाब-किताब रखने का काम। दुनिया में किसी के भरोसे काम हो जाए, ऐसा मुश्किल है।

गृहस्वामी अपने दफ्तर के कामों में ही व्यस्त रहते थे। दफ्तर के काम में थोड़ी-सी चूक हो जाए तो फिर आफत। उन दिनों केशवबाबू ही सबसे जिम्मेदार कर्मचारी थे। तनखा चालीस रुपये से बढ़ते-बढ़ते तीन सौ तक पहुंच गई थी। जब तक वे कमाएंगे तभी तक परिवार का खर्च चल सकेगा, तभी तक किसी तरह खाने-पीने का खर्च चलाते हुए मकान बनवा सकेंगे।

रसोईघर में जल्दी-जल्दी खाना परोसकर भाभी पुकारती, "अरे वसु, कहां हो, चावल परोस दिया है, खा लो।"

लेकिन तब वहां वासु मौजूद नहीं रहता था।

गृहिणी पुकारते-पुकारते हैरान हो जाती, मगर वासु नहीं मिलता। अंत मे वही चावल सड़क के भिखारियों को दे देती थी।

जब वासु स्कूल से लौटता, उसका चेहरा लटका रहता था, आंखें गड्ढे में धंसी हुईं। दिन-भर खाना न खाने की वजह से उसके पांव लड़खड़ाते थे।

"कहा चले गए थे ? चावल क्यों नहीं खाकर गए ?"

शुरु मे वासु ने इस बात का जवाब नही दिया। कमरे के अन्दर जाकर तकिए में मुह छिपाकर लेट गया।

गृहिणी ने दुबारा प्रश्न किया, "तुम्हें क्या हो गया है ? तुमने चावल मागा और मैं चावल परोसकर तुम्हें बार-बार पुकारती रही, लेकिन तुम्हारी कोई आहट ही नही मिली। तुम कहा चले गए थे ?"

फिर भी वासु ने कोई उत्तर नही दिया। जिस तरह लेटा था, उसी तरह लेटा रहा। अब गृहिणी ने उसे हिलाया-डुलाया। "उठो, उठो, दिन-भर तुमने खाया-पिया नही है, दो कौर कुछ खा लो।"

अब वासु ने जबान खोली। भाभी का हाथ झटककर पहले की तरह ही तकिए में मुह छिपाकर कहा, "मैं नहीं खाऊंगा, बिना खाए-पिए ही मैं मर जाऊं फिर भी तुम खाने के लिए कहने वाली नहीं हो ···" मुह घुमाकर वह उसी तरह पड़ रहा।

निर्मला ने भी बार-बार आकर कहा, "चाचाजी, आप खाना नही खाएंगे ? आपके कारण मां ने भी मुह मे एक दाना तक नही डाला है।"

भतीजी की भी बातें वासु ने अनसुनी कर दी। आखिर में काफी रात बीतने पर केशव बाबू आए। गृहिणी से सारी बातें सुनकर वे वासु के पास गए। वासु तब सो चुका था।

"तुमने आज भात क्यो नही खाया ? क्या हुआ है ?" केशव बाबू ने पूछा।

वासु संभवत: केशव बाबू से थोड़ा-बहुत डरता था। वह बोला, "अब मैं इस घर मे खाना नही खाऊंगा।"

"क्यो ? क्यों नही खाओगे ?"

वासु बोला, "मेरा अपना कोई नहीं है। ऐसी हालत में मैं खाऊं ही क्यों ?"

उसकी वात सुनकर केशव वावू अचंभे में आ गए। छोटा मुंह वड़ी वात !

"इसका मतलव ? इस घर में तुम्हारा कोई नहीं है—इसका मतलव ? कोई तुम्हारी देख-रेख नहीं करता है ? तुम जहां-तहां अड्डे जमाओगे, स्कूल नहीं जाओगे, इम्तहान में फेल होगे—ऐसी हालत में हर कोई तुम्हारे पीछे ही लगा रहे ? तुम्हारी भाभी ने तुम्हारे चलते दिन-भर खाना नहीं खाया है, यह कुछ भी नहीं है ? तुम क्या सोचते हो ? मैं दफ्तर में जी-तोड़ मेहनत कर जो पैसा कमाकर लाता हूं, वह तुम्हारे पीछे गंवाता रहूं ? तुम्हारे लिए पच्चीस रुपये महीने पर मास्टर रखा था। मास्टर हर रोज़ आकर लौट जाता था, तुम्हारा कोई अता-पता ही नहीं रहता था। फिर वड़े होकर तुम क्या करोगे ? भाड़ झोंकोगे ?"

इस पर भी जव वासु ने कोई उत्तर न दिया तो केशव वावू उसका हाथ पकड़कर खींचने लगे, "उठो, उठो, चलो, खाना खा लो।"

"नहीं, मैं नहीं खाऊंगा।"

"क्यों नहीं खाओगे ?"

अव वासु के मुंह से असली वात निकल गई, "जिसकी मां जिन्दा नहीं है, उसे विना खाए-पिए ही मर जाना चाहिए।"

अव केशव वावू अपना गुस्सा संभाल नहीं सके। वासु के मुंह पर एक तमाचा जड़ दिया। "हरामज़ादे, तुममें यह अक्ल पैदा हो गई है ? तुम्हारे पेट में इतना पाप भरा है ? ठहरो, मैं तुम्हें सही रास्ते पर लाता हूं…"

यह कहकर वे निर्मला से वोले, "ज़रा मेरी छड़ी तो ले आओ। आज मैं इसे ही मार डालूंगा।"

एकाएक गृहिणी कमरे के अन्दर आ गई। "तुम पागल हो गए हो, लोगों के वीच हंसी उड़वाओगे ? वह जव तक घर में है, मैं उसे छूने भी नहीं दूंगी। वदनामी फैलेगी तो तुम्हारी नहीं, मेरी ही फैलेगी। तुम इस कमरे से वाहर चले जाओ। जाओ…" गृहिणी वोली।

यह कहकर केशव वावू को खींचकर कमरे से वाहर ले गई। वरना क्या कांड हो जाता, पता नहीं। यों केशव वावू सीधे-सादे, शांत-प्रकृति के आदमी हैं। लेकिन भाई के इस व्यवहार से उनके-जैसे आदमी भी रुद्र-मूर्ति धारण कर सकते हैं, देखकर इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

उसके बाद एक दिन केशव बाबू का मकान बनकर तैयार हो गया। पहले एकमंजिला, उससे बहुत दिनों के बाद दोमंजिला बना था।

उस एकमंजिले के खर्च का धक्का संभालने मे ही केशव बाबू को दफ्तर से कई हजार का कर्ज लेना पड़ा था। कर्ज को किस्तों में महीने-महीने चुकाने के बाद जो पैसा बचता था, उससे घर का खर्च चलना मुश्किल था।

परन्तु इस असंभव को भी सभव बनाने का श्रेय एकमात्र उनकी पत्नी को ही था। गृहिणी की सूझ-बूझ के कारण ही केशव बाबू नौकरी मे उतनी तरक्की कर सके थे और मकान भी बनवा सके थे।

केशव बाबू कहते, "आजकल नौकरी करने वालों को दो घंटा ज्यादा काम करने से ओवरटाइम का भत्ता मिलता है, लेकिन उन दिनों बात ही अलग थी।"

तब कब तीसरे पहर के पाच-छह बज जाते। कब शाम होती, कब रात उतर आती, काम करते-करते इस बात का ध्यान ही नहीं रहता था।

जब रात हो जाती तब वे मेज छोड़कर उठते थे। जो काम खत्म नहीं होता था, उसे घर ले आते थे और मच्छरदानी मे बैठकर खत्म करते थे। उसी के दरमियान कब मकान की नींव खोदी गई, राजमिस्त्री ने कितना काम किया, सीमेण्ट की खरीद किस दर पर हुई, इन सारी बातों की निगरानी गृहिणी ही करती थी।

उन दिनों गृहिणी ने अपनी कार्य-कुशलता का आश्चर्यजनक परिचय दिया था। एक ही साड़ी को साबुन से फीचकर पहनती थी, सी-साकर उससे महीनों तक काम लेती थी। एक ही साबुन को दो टुकड़ों में बाटकर इसलिए उपयोग मे लाती थी कि कहीं ज्यादा खर्च न हो जाए।

इसी असाधारण अध्यवसाय के फलस्वरूप यह मकान बनकर तैयार हुआ। योग्य पात्र देखकर निर्मला की शादी दी गई। दफ्तर के को-आपरेटिव बैंक से जो कर्ज लिया था, उसे भी चुकाया। आदमी जीवन मे जो चाहता है, वह सब

हो गया। इस मुहल्ले के चारों तरफ जिस किस्म की वड़ी-वड़ी इमारतें हैं, केशव वावू का मकान भी उसी किस्म का है। एक दुनियादार आदमी इसके अतिरिक्त और किस चीज़ की चाहना कर सकता है ?

और केशव वावू भी तो दूसरे-दूसरे लोगों की तरह साधारण ही आदमी हैं। जो व्यक्ति असाधारण होते हैं, वे अमरता चाहते हैं, परमार्थ की कामना करते हैं, दुनिया के कल्याण के निमित्त अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देते हैं। किंतु जो साधारण मनुष्य हुआ करते हैं वे स्वस्थ रहकर जीवन जीना चाहते हैं, वढ़िया खाना-पहनना चाहते हैं, घर और गाड़ी खरीद कर यथार्थ जगत में उन्नति के शिखर तक पहुंचना चाहते हैं। केशव वावू भी शिखर पर पहुंच गए थे। चालीस रुपये से वढ़ते-वढ़ते अंत में उनकी तनखा डेढ़ हजार तक पहुंच गई थी।

उन दिनों डेढ़ हज़ार रुपये की कीमत कोई कम न थी। लेकिन उसके लिए उन्हें वहुत वड़ी कीमतें चुकानी पड़ी थीं। उस वात को सोचते ही केशव वावू अव भी सिहर उठते हैं।

निर्मला तव वड़ी हो चुकी थी। उसमें समझदारी आ चुकी थी। उसने मां की तकलीफें देखी थीं, वावूजीको जी-तोड़ मेहनत करते देखा था। चाचाजी के अत्याचारों से साक्षात्कार किया था। तव वह शादी के लायक हो चुकी थी। गृहिणी रसोई पकाती थी, कपड़ा फींचती थी, वरतन मलती थी, इसके अतिरिक्त इतनी दूर आकर मकान के कामों की निगरानी रखती थी, राज-मिस्त्री से काम लेती थी, सीमेण्ट, वालू-चूना सुर्खी का हिसाव रखती थी। वाज़ार से दर-दाम का पता लगाकर लोहा-लक्कड़ वगैरह सामानों के विलों का भुगतान करती थी।

इसलिए ऐसा करती थी कि कलकत्ते में उसे अपना एक मकान वनवाना था। चाहे जैसे हो, अपना एक मकान होना ही चाहिए।

मकान जव वनकर करीव-करीव तैयार हो चुका, उसी समय लड़की की शादी का पैगाम आया।

यह वात सोचते ही केशव वावू का दिमाग अव भी गरम हो जाता है। यही वक्त है कि लड़की की उम्र शादी के लायक हो जाए ? दो दिन वाद ही होती तो कौन-सी क्षति हो जाती ?

ठीक उसी वक्त दफ्तर मे कामो का दवाव बढ गया। वह दवाव भी क्या साधारण दवाव था ? उन दिनों की विलायती कंपनी थी। ईश्वर चाहे क्षमा कर दे, पर उन दिनो की विलायती कंपनी क्षमा या करुणा का नाम तक नहीं जानती थी। अपने खून-पसीने की कमाई से केशव बाबू ने भाई के खाने-पहनने का खर्च संभाला था, घर के हर तरह के खर्च की पूर्ति की थी, लड़की को पढ़ाया लिखाया था।

उन दिनो चावल दस रुपये मन की दर से मिलता था, फिर भी पसारी से उधार लेना पड़ता था। एक ही साड़ी से काम चलाया जाता था और सो भी तीन रुपये की साड़ी से ही। ऐसी साडी भी वर्ष में दो से ज्यादा खरीद कर पत्नी को नही दे पाते थे। सस्ती के उन दिनों मे भी मेदनीपुर में हर वर्ष अकाल पड़ता था, बाढ़ आती थी और कल्याण समितियों का मजमा कलकत्ते में इकट्ठा होता था। वे लोग हारमोनियम बजाते हुए गीत गाते थे और मुहल्ले-महल्ले मे घूमकर चावल, कपडा, पैसा मांगते चलते थे। उसी चावल को ले जाकर कलकत्ते के बहूबाजार मे होटल खोलते थे और मालामाल हो जाते थे।

उसके बाद निर्मला के विवाह के दिन एक काड घटित हो गया। केशव बाबू ने योग्य पात्र देखकर ही शादी दी थी। असल में यह रिश्ता एक घटक ने तय किया था। कलकत्ते के बड़े-बड़े खानदानों के लड़के-लडकियो की शादी उसने कराई थी। इसलिए उसने जो कुछ ब्यौरा प्रस्तुत किया, उससे गृहिणी बहुत ही प्रसन्न हुई।

लड़का सरकारी दफ्तर में काम करता है। तनखा कितनी है ? तनखा जितनी है, उससे पेट नही भर सकता है। मात्र तीस रुपये। उससे विवाह करने से लड़के-बच्चो का पालन हो सकता है ? वही तीस रुपये की तनखा बढ़ते-बढ़ते रिटायर करने के वक्त नब्बे तक पहुचेगी।

फिर भी उन दिनो तीस रुपये की भी कीमत कोई कम न थी। आजकल के डेढ हज़ार रुपये के बराबर। आजकल जिस तरह डेढ हज़ार रुपये से भी किसी का निर्वाह नहीं हो पाता है, यहा तक कि नमक-तेल की कमी हो जाती है, उन दिनों तीस रुपये की वही हालत थी।

घटक बोला, "तीस रुपये में गृहस्थी चलाना मुश्किल है, यह बात हर कोई जानता है। मगर सरकारी नौकरी रहने के कारण ऊपरी आय हो जाती है।

ऊपरी आय के तौर पर खासी अच्छी रकम मिल जाती है।"

सुनकर गृहिणी प्रसन्न हुई। ऊपरी आय होती है तो लड़की अवश्य ही सुखी रहेगी। "लड़के का वाप क्या करता है ?" गृहिणी ने पूछा।

घटक वोला, "लड़के के मां-वाप, भाई-वहन कोई नहीं हैं। विलकुल अकेला है।"

मां-वाप, भाई-वहन, कोई न हो, ऐसे पात्र विरले ही मिलते हैं। लड़की ससुराल जाते ही घर की मालकिन वन वैठेगी। उसे किसी की तावेदारी नहीं करनी होगी। लड़की का भाग्य अच्छा है वरना इस तरह का छोटा परिवार कितनी लड़कियों को नसीव होता है !

पात्र दोस्त-मित्रों के साथ लड़की देखने आया।

छुट्टी का दिन था। केशव वावू कभी वाज़ार दौड़ते थे तो कभी घर। पांच व्यक्ति देखने आएंगे। उनके नाश्ते-पानी का इन्तज़ाम करना है। गृहिणी और वावू दोनों व्यस्त थे। वासव से घर पर ही रहने को कहा था।

कहा था, "आज तुम कहीं मत जाना, घर पर ही रहना, समझे ? नया रिश्ता कायम होने जा रहा है, उस वक्त चाचा का रहना ज़रूरी है।"

वासव वीच-वीच में बिल्कुल शांत, शिष्ट वनकर रहता था। वड़े भाई का कहा मानता था।

वह बोला, "आप चिन्ता मत करें। मैं रहूंगा।"

"हां, रहना। अव तुम अकलमंद हो गए हो, उम्र भी हो गई है, अव तुम छोटे वच्चे नहीं हो। मुन्नी के विवाह के वाद तुम्हें ही तो हर चीज़ की निगरानी रखनी है। जानते ही हो कि वालीगंज में हम लोगों का मकान वन रहा है। वहीं हमें चले जाना है। उस समय घर में रहेंगे, तुम, मैं और तुम्हारी भाभी ही..."

कुछ देर रुककर फिर वोले, "मैं भी नौकरी से रिटायर होने जा रहा हूं, किसी दिन इस दुनिया से भी विदा हो जाऊंगा। तुम्हारी भाभी की सेहत जिस तरह चल रही है, लगता है, वह भी ज़्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेगी। मेरी तमाम विषय-सम्पत्ति, रुपया-पैसा, जो कुछ है, उसका उपभोग तुम्हीं करोगे। मुन्नी की शादी हो जाए तो फिर कोशिश-पैरवी कर तुम्हें भी किसी दफ्तर में रखवा दूंगा। मरने के पहले मुझे सारा इन्तज़ाम कर देना है।"

जब-जब वक्त मिलता, वासव से यही सब कहा करते थे। वासु हमेशा घर पर नही रहता था, इसीलिए मौका मिलने पर ही यह सब कहते थे।

"दोस्त-मित्र सुख के दिनों के ही साथी होते हैं, यह बात गाठ में बांध लो। ज्यों ही उन्हे पता चल जाएगा कि तुम्हारे हालात खराब हो गए हैं, कोई भी तुम्हारे पास फटकने नही आएगा। जानता हूं, मैं जो अभी कह रहा हूं, तुम्हें सुनने में अच्छा नही लग रहा है लेकिन मैं जब नही रहूंगा तो तुम्हें पता चलेगा कि मैंने कितनी सही बातें कही थी।"

वासव जब तक भैया के सामने रहता, उनकी बातें धैर्यपूर्वक सुनता था। लेकिन तुरन्त ही आवारा दोस्त-मित्रों की टोली पुकारती, "वासु···"

तत्काल वासु और ही तरह का हो जाता था। अब तक केशव बाबू ने जो कुछ कहा था, उसे दूसरे कान से बाहर निकाल देता। फिर उसका अता-पता ही नही चलता था।

गृहिणी पुकारती, "अरे वासु, खाना खालो, अब तक तुमने मुह मे एक दाना तक नही डाला है।"

लेकिन उस वक्त कौन किसकी बात सुनता है! दोस्त-मित्र उसे अपने साथ लेकर गायब हो जाते थे। कहा से उसके इतने दोस्त-मित्र जुट जाते, इसका भी कोई पता नही चलता था। दोस्त अगर अच्छे होते तो बात ही कुछ अलग थी। जितने भी थे सबके सब कंगले। जैसी उनकी पोशाकें हुआ करती थी, वैसे ही उनके चेहरे-मोहरे। उनका चेहरा देखते ही समझ मे आ जाता था कि सब-के-सब घर से निकाले गए हैं। सर पर कौए के खोंते की तरह जुल्फें, बदन पर पच्चीकारी की हुई बुशर्ट और पहनावे के रूप में बोतलनुमा पैंट। उन पर नजर पड़ते ही केशव बाबू की देह में आग लग जाती थी।

एक दिन केशव बाबू ने पूछा, "ये लोग कौन हैं जो? क्या करते हैं?" वासु ने भैया के इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया।

फिर भी केशव बाबू ने पिंड नही छोड़ा। पूछा, "उन लोगों के बाप क्या किया करते हैं?"

वासु ने बताया कि वे लोग बड़े-बड़े आदमियों के लड़के हैं।

"बड़े-बड़े आदमियों के लड़के—का मतलब? लखपति या करोड़पति? अगर लखपति के लड़के हैं तो इस तरह सांडों की तरह मारे-मारे क्यों फिरते;

ऊपरी आय के तौर पर खासी अच्छी रकम मिल जाती है।"

सुनकर गृहिणी प्रसन्न हुई। ऊपरी आय होती है तो लड़की अवश्य ही सुखी रहेगी। "लड़के का बाप क्या करता है ?" गृहिणी ने पूछा।

घटक बोला, "लड़के के मां-बाप, भाई-बहन कोई नहीं हैं। बिलकुल अकेला है।"

मां-बाप, भाई-बहन, कोई न हो, ऐसे पात्र विरले ही मिलते हैं। लड़की ससुराल जाते ही घर की मालकिन बन बैठेगी। उसे किसी की ताबेदारी नहीं करनी होगी। लड़की का भाग्य अच्छा है वरना इस तरह का छोटा परिवार कितनी लड़कियों को नसीब होता है !

पात्र दोस्त-मित्रों के साथ लड़की देखने आया।

छुट्टी का दिन था। केशव बाबू कभी बाज़ार दौड़ते थे तो कभी घर। पांच व्यक्ति देखने आएंगे। उनके नाश्ते-पानी का इन्तज़ाम करना है। गृहिणी और बाबू दोनों व्यस्त थे। बासव से घर पर ही रहने को कहा था।

कहा था, "आज तुम कहीं मत जाना, घर पर ही रहना, समझे ? नया रिश्ता कायम होने जा रहा है, उस वक्त चाचा का रहना ज़रूरी है।"

बासव बीच-बीच में बिलकुल शांत, शिष्ट बनकर रहता था। बड़े भाई का कहा मानता था।

वह बोला, "आप चिन्ता मत करें। मैं रहूंगा।"

"हां, रहना। अब तुम अकलमंद हो गए हो, उम्र भी हो गई है, अब तुम छोटे बच्चे नहीं हो। मुन्नी के विवाह के बाद तुम्हें ही तो हर चीज़ की निगरानी रखनी है। जानते ही हो कि बालीगंज में हम लोगों का मकान बन रहा है। वहीं हमें चले जाना है। उस समय घर में रहेंगे, तुम, मैं और तुम्हारी भाभी ही..."

कुछ देर रुककर फिर बोले, "मैं भी नौकरी से रिटायर होने जा रहा हूं, किसी दिन इस दुनिया से भी विदा हो जाऊंगा। तुम्हारी भाभी की सेहत जिस तरह चल रही है, लगता है, वह भी ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेगी। मेरी तमाम विषय-सम्पत्ति, रुपया-पैसा, जो कुछ है, उसका उपभोग तुम्हीं करोगे। मुन्नी की शादी हो जाए तो फिर कोशिश-पैरवी कर तुम्हें भी किसी दफ्तर में रखवा दूंगा। मरने के पहले मुझे सारा इन्तज़ाम कर देना है।"

जब-जब वक्त मिलता, वासव से यही सब कहा करते थे। वासु हमेशा घर पर नहीं रहता था, इसीलिए मौका मिलने पर ही यह सब कहते थे।

"दोस्त-मित्र सुख के दिनों के ही साथी होते हैं, यह बात गाठ में बाध लो। ज्यो ही उन्हे पता चल जाएगा कि तुम्हारे हालात खराब हो गए है, कोई भी तुम्हारे पास फटकने नही आएगा। जानता हूं, मैं जो अभी कह रहा हूं, तुम्हें सुनने में अच्छा नही लग रहा है लेकिन मैं जब नही रहूगा तो तुम्हें पता चलेगा कि मैंने कितनी सही बातें कही थी।"

वासव जब तक भैया के सामने रहता, उनकी बातें धैर्यपूर्वक सुनता था। लेकिन तुरन्त ही आवारा दोस्त-मित्रों की टोली पुकारती, "वासु"

तत्काल वासु और ही तरह का हो जाता था। अब तक केशव बाबू ने जो कुछ कहा था, उसे दूसरे कान से बाहर निकाल देता। फिर उसका अता-पता ही नही चलता था।

गृहिणी पुकारती, "अरे वासु, खाना खालो, अब तक तुमने मुह मे एक दाना तक नही डाला है।"

लेकिन उस वक्त कौन किसकी बात सुनता है! दोस्त-मित्र उसे अपने साथ लेकर गायब हो जाते थे। कहां से उसके इतने दोस्त-मित्र जुट जाते, इसका भी कोई पता नही चलता था। दोस्त अगर अच्छे होते तो बात ही कुछ अलग थी। जितने भी थे सबके सब कंगले। जैसी उनकी पोशाकें हुआ करती थी, वैसे ही उनके चेहरे-मोहरे। उनका चेहरा देखते ही समझ मे आ जाता था कि सब-के-सब घर से निकाले गए हैं। सर पर कौए के खोंते की तरह जुल्फें, बदन पर पच्चीकारी की हुई बुशर्ट और पहनावे के रूप मे बोतलनुमा पैंट। उन पर नज़र पड़ते ही केशव बाबू की देह मे आग लग जाती थी।

एक दिन केशव बाबू ने पूछा, "ये लोग कौन हैं जी? क्या करते हैं?" वासु ने भैया के इस सवाल का कोई जवाब नही दिया।

फिर भी केशव बाबू ने पिंड नहीं छोड़ा। पूछा, "उन लोगों के बाप क्या किया करते हैं?"

वासु ने बताया कि वे लोग बड़े-बड़े आदमियों के लड़के हैं।

"बड़े-बड़े आदमियों के लड़के—का मतलब? लखपति या करोड़पति? अगर लखपति के लड़के हैं तो इस तरह वंडों की तरह मारे-मारे क्यों फिरते

हैं ? उनके मां-वाप क्या डांटते नहीं हैं ? कुछ भी नहीं कहते ?"

ये सब वातें वासु के कान में जैसे पहुंचती ही नहीं थीं। मुद्रा ऐसी होती जैसे वह बूढ़ा व्यर्थ ही बुड़बुड़ा रहा है। व्यर्थ की वातें करके बुड्ढा अपना मुंह खराव कर रहा है। उसकी मुद्रा वैसी रहती जैसे वह कह रहा हो कि तुम लोग मुझे चाहे जितना भी क्यों न पीटो, मैंने पीठ पर सूप बांध लिया है और कानों में रुई ठूंस ली है।

एक दिन केशव वावू वस पर चढ़कर दफ्तर से लौट रहे थे। एकाएक धर्म-तल्ला के एक कोने की ओर आंखें जाते ही वासु दीख पड़ा। वासु सिगरेट सुलगाकर धुएं के छल्ले उड़ा रहा था। उसके साथ एक लड़की थी।

लड़की ! लड़की पर नजर पड़ते ही उसे अच्छी तरह से देखने के ख्याल से आंखों पर के चश्मे को नाक के ऊपरी हिस्से में ठीक से अटका लिया।

सचमुच लड़की ही है। वासु की हम-उम्र—लंबा-दुवला चेहरा। लड़की के सिर पर भी वासु के जैसे रुखड़े वालों की ज़ुल्फें हैं। शायद तेल नहीं लगाया है।

वासु उसकी वगल में खड़ा सिगरेट का धुआं उगल रहा है और लड़की उससे वातें कर रही है।

केशव वावू की आंखें चौंधियाने लगीं। अव तक वे इतना ही जानते थे कि छोकरा दोस्त-मित्रों के साथ अड्डेवाज़ी करता है और सिनेमा देखने में ही पैसा उड़ाता है।

लेकिन अव तक उन्होंने इस वात की कल्पना तक न की थी कि वासु छोकरियों के पल्ले पड़ गया है। यह देखकर उनका मन वड़ा ही खराव हो गया। उन लोगों के वंश का लड़का होने पर भी वासु इस तरह वरवाद हो गया। मन में सोचा था कि साहव से कहकर कोई नौकरी दिला देंगे।

इसके वाद उन्हें भरोसा ही नहीं हुआ। नौकरी में घुसने के वाद अगर इसी तरह की करतूतें कर वैठे तो वे मुंह दिखाने के लायक नहीं रह जाएंगे।

घर आने पर उन्होंने चारों तरफ ध्यान से देखा कि निर्मला वहां है या नहीं। उसके वाद अपनी पत्नी को सारी घटना से अवगत कराया।

सव-कुछ सुनने के वाद गृहिणी वोली, "मैं पहले ही जानती थी कि वह उसी किस्म का लड़का है। वह खुद तो डूवेगा ही, तुम्हें भी डुवोएगा।"

यह बात किसी को मालूम न हो, इसके लिए केशव बाबू ने अपनी पत्नी से आग्रह किया।

उसके बाद फिर बोले, "सौभाग्य की बात है कि पिताजी जीवित नहीं हैं, जीवित रहते तो उनके मन में बेहद चोट पहुंचती। मर कर वे कम-से-कम चैन से तो हैं..."

गृहिणी को यह बात किसी से कहने से मना किया था तो जरूर, मगर वे खुद दफ्तर के बाबुओं से कह बैठे। एक-एक कर सभी को आगाह कर दिया कि दूसरे को मत बताएं, वरना लोग क्या सोचेंगे।

दोस्तों ने वायदा किया कि यह बात वे किसी से नहीं कहेंगे।

लेकिन बात पूरे दफ्तर में फैल गई। सभी कहने लगे, "इसमें केशव बाबू की पत्नी का दोष है। अनाथ लड़का है, देखने-सुनने वाला कोई नहीं है, ऐसी हालत में वह लड़का खराब हो ही जाएगा..."

कुछ दिनों तक केशव बाबू का मन बड़ा ही व्याकुल रहा।

एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "तुमने वासु से कुछ कहा?"

गृहिणी बोली, "मैं क्यों कहने गई? कहना मेरे लिए जरूरी नहीं है। तुम्हारा लाड़ला भाई ठहरा, खराब रास्ते पर जाएगा तो तुम समझो।"

केशव बाबू बोले, "अहा, तुम बुरा क्यों मान गई? एक ही भाई है, वह अगर खराब रास्ते पर चला जाएगा तो तकलीफ नहीं होगी? मरने के समय बाबूजी कह गए थे : केशव, नाबालिग भाई की देखरेख करना"

गृहिणी बोली, "तुम दिन-भर दफ्तर में रहकर नाबालिग भाई की देख-रेख कैसे करोगे?"

केशव बाबू बोले, "अगर मैं दफ्तर में काम न करूं तो घर का खर्च कैसे चले? तुम क्या यही चाहती हो कि आफिस-दफ्तर छोड़कर मैं अपने भाई को लेकर घर में ही बैठा रहूं?"

गृहिणी बोली, "मैंने ऐसा कब कहा है?"

"घुमा-फिराकर तुम यही कहना चाहती हो," केशव बाबू ने कहा, "मैं अगर पैसा कमाकर न लाऊं तो तुम लोग खाओगे क्या? और इतना-इतना रुपया खर्च करके तुम जो यह मकान बनवा रही हो, वह कैसे पूरा होगा?"

गृहिणी बोली, "तुम क्या सोचते हो कि मैं यह घर अपनी सुख-सुविधा के

लिए बनवा रही हूं ? मैं उस घर में पैर पर पैर रखकर मौज मनाऊंगी ? दुनियादारी का सुख मेरे भाग्य में नहीं है। जिस दिन ससुर जी इस शूल को रखकर चल बसे, उसी दिन यह बात मेरी समझ में आ गई थी कि मेरे भाग्य में सुख नाम की चीज नहीं है। मैं बेचूंगी ही कितने दिन। यों भी मेरी हड्डी-पसली ढीली हो चुकी हैं, मैं अब ज्यादा दिन बच नहीं सकती। एक लड़की है जो मेरे गले का कांटा है। उस लड़की को कूल-किनारे लगाते ही मैं निश्चित हो जाऊंगी, उसके बाद अपने लाड़ले भाई को लेकर तुम जी-भर ऐश-मौज रहना…"

गृहिणी भी वैसी ही है। क्या कहना चाहती थी और क्या तो कह बैठी। सारा दोष केशव बाबू के मत्थे पर मढ़ दिया। वे जो नौकरी कर रहे हैं, नौकरी करके पैसा ला रहे हैं। भाई जो आवारा निकल गया, लड़कियों के साथ मौज उड़ा रहा है, सिगरेट फूंक रहा है, उनके पैसे से कलकत्ते में जो पक्का मकान बन रहा है—यह सब दोष उन्हीं का है।

१२

केशव बाबू का सारा जीवन इसी तरह व्यतीत हुआ है। इसी तरह महीने-पर-महीना, बरस-पर-बरस गुज़ारते हुए उन्होंने नौकरी कर अपने परिवार का खर्च चलाया है। परिवार की यातनाओं को जीकर वे सोचते कि अब यातना का अन्त आ चला। इसके बाद ही अच्छा वक्त आने वाला है।

लेकिन आदमी का अच्छा वक्त कभी आता भी है ?

लड़की के निरीक्षण के सन्दर्भ में एक दिन पात्र दल-बल के साथ आया। वह दल कई तरुणों का था। सभी वासु के समवयस्क थे।

केशव बाबू ने उनके लिए कीमती नाश्ते का प्रबन्ध किया था।

पात्र के एक मित्र ने निर्मला से पूछा, "आप रसोई पकाना जानती हैं ?"

निर्मला ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"क्या-क्या रसोई पका सकती हैं ?"

निर्मला जिस तरह सिर झुकाकर बैठी थी, उसी तरह बैठी रही। केशव

बाबू ने निर्मला के बदले जवाब दिया, "यह हर तरह की रसोई बनाना जानती है—भात, दाल, मछली का कालिया, चटनी, सब-कुछ…"

"चाप—कटलेट ?"

केशव बाबू बोले, "यह सब हर गृहस्थ के घर में बनता तो नहीं, सीखने पर यह सब भी बना लेगी। बड़ी ही अक्लमन्द लड़की है, मां जब कभी बीमार पड़ती है तो यही सब कुछ करती-धरती है। दफ्तर जाने के समय मुझे भात बनाकर खिलाती है, इसके चाचाजी जब कालेज जाते हैं, वही उन्हें खिलाती-पिलाती है।"

"चाचा ? आपके भाई भी हैं ? उन्हें देख नहीं रहा हूं।"

केशव बाबू कठिनाई में पड़ गए। उन्होंने बाबू से बार-बार कहा था कि वह घर पर ही रहे, फिर भी अब तक उनका कहीं पता नहीं है।

"वह जरा बाहर निकला है, अभी आ जाता।" केशव बाबू ने कहा।

इसके अलावा वे कहते ही क्या ? अपने सम्मान की रक्षा के लिए उन्हें झूठ का सहारा लेना पड़ा। मगर झूठ बोलते वक्त उनके मन को बड़ा ही कष्ट पहुंचा।

उसके बाद लेन-देन की बात हुई। लड़की का बाप होने के नाते है और होना। जैसे वे चोरी के अपराध में पकड़े गए हों।

घटक वहीं मौजूद था। उसीने सारा फैसला किया। वह एक बार अन्दर गृहिणी के कमरे में जाता था और दूसरी बार बाहर के कमरे में आता था।

गृहिणी घटक से बोली, "एक बार मालिक को अन्दर भेज दो।"

केशव बाबू के आने पर गृहिणी बोली, "तुम लेन-देन के विषय में कुछ मत कहना। जो कुछ कहना होगा, घटक की मारफत ही कहला भेजूंगी।"

इसी तरह की व्यवस्था की गई। पात्र आशीर्वाद पाकर अपने सम्बन्धियों के साथ चला गया। कह गया कि वे लोग घटक की मारफत बाद में खबर भेज देंगे।

१३

यही है केशव बाबू के जीवन का मध्यपर्व ।

मध्यपर्व में ही इकलौती बेटी का ब्याह सम्पन्न हो गया। केशव बाबू ने सोचा, अब उनके जीवन की असली जिम्मेदारी खत्म हुई। दामाद भी मोटे तौर पर अच्छी ही नौकरी करता है। पहले असिस्टेंट हेडक्लर्क था। तनखा तीस रुपये होने से क्या होगा, ऊपरी आय के रूप में महीने में करीब तीस रुपये अलग से मिल जाते हैं। इसके अलावा साग-सब्जी, मछली वगैरह उसे खरीदना नहीं पड़ता है। जो लोग बुकिंग कराने आते हैं, मुफ्त में दे जाते हैं।

लेकिन काशीकांत उससे खुश नहीं था। वह निर्मला से कहता, "साले की नौकरी मैं छोड़ दूंगा, अब इसमें कोई रस नहीं रहा।"

निर्मला अपने पति की बातें सुनकर डर जाती थी। दो कमरों का छोटा-सा क्वार्टर था। खिड़की से बाहर की ओर ताकते ही खुला आसमान नज़र आता था। जन्म से कलकत्ते में मायके की गली के अन्दर के मकान में रहने के बाद जब वह एकाएक बाहर आई तो उसे बड़ा ही अच्छा लगा।

किन्तु कुछ दिन बीतते-न-बीतते उसे महसूस होने लगा कि उसका पति कुछ और ही तरह का है। वह गृहस्थी के खर्च की तालिका देखते ही झुंझला उठता था।

निर्मला बड़ी ही मितव्ययिता से गृहस्थी का खर्च चलाती थी। अपनी मां से उसने सीखा था कि किस तरह कम खर्च में गृहस्थी चलाई जाती है। अचानक सरसों का तेल जब खत्म हो जाता तो काशीनाथ से कहना पड़ता था।

काशीकांत कहता, "यह क्या? अभी तो उस दिन तुम्हें एक सेर तेल खरीद दिया था। इसी बीच सारा तेल खत्म हो गया?"

निर्मला कहती, "खत्म हो गया तभी न कह रही हूं। एक सेर तेल से कहीं एक महीने तक चलाया जा सकता है?"

काशीकांत कहता, "नहीं, यह सब मैं नहीं जानता। तुम न हो तो सामन्त बाबू की पत्नी से तेल उधार मांगकर ले आओ।"

यह बात सुनते ही निर्मला हतप्रभ हो गई। सामन्त बाबू बड़े बाबू हैं, यानी मालबाबू। उनका क्वार्टर बगल में ही है। थोड़ी-बहुत जान-पहचान है। ऊपरी आय की मात्रा बहुत अधिक है इसलिए उनके परिवार में भी शान-शौकत ज्यादा है। परिवार के सदस्यों की संख्या जिस तरह अधिक है, उस अनुपात में आय भी अधिक है और खर्च भी अधिक।

मास-मछली खाने का प्रचलन भी उनके यहां ज्यादा है। अगल-बगल के क्वार्टर में रहने के कारण आने-जाने का थोड़ा-बहुत सिलसिला है।

मगर यह सब रहने पर भी निर्मला, क्या वहां सरसों का तेल उधार मांगने जाए ?

काशीकांत बोला, "इससे क्या बिगड़ता है ? अगल-बगल में रहने से आदमी क्या पास-पड़ोस से उधार नहीं लेता ?"

"नहीं, लोग चाहे जो करें, मेरे लिए शर्मनाक काम है। मुझसे यह काम नहीं हो सकता। अगर तेल उधार लाना है तो जाकर तुम्हीं ले आओ।" निर्मला ने कहा।

काशीकांत गुस्से में आ गया, "फिर उबला हुआ ही खाकर काम चलाओ। इस महीने में अब मैं पैसा नहीं दे सकूंगा। मेरे पास उतने पैसे नहीं हैं।"

"उबाला हुआ भले ही खा लूंगी, परन्तु दूसरे के घर से सरसों का तेल उधार मांगकर मैं नहीं ला सकती।"

निर्मला का टका-सा उत्तर सुनकर काशीकान्त का पारा चढ़ गया। वह बोला, "अगर तुम उधार मांग ही नहीं सकती हो तो मुझ-जैसे गरीब से शादी ही क्यों की थी ?"

"मैंने तुमसे शादी की है या मुझे देख-परख कर तुमने ही मुझसे शादी की है ?" निर्मला ने प्रत्युत्तर दिया।

काशीकांत ने कहा, "देखो, मैं खरा-खोटा कहने वाला आदमी हूं। मैं तुम्हारी बड़ी-बड़ी बातें नहीं सुन सकता हूं। बड़े आदमी की लड़की होने के नाते अगर तुममें मान-अपमान का इतना बोध है तो अपने बाप के घर से ही तेल खरीदने का पैसा ला सकती हो।"

"क्या कह रहे हो ?"

"हां-हां, ठीक ही कह रहा हूं। तुम्हें रंगीन धागा दा

ने मेरे कंधे पर तुम्हारा बोझ लाद दिया है। हालांकि अन्दर-ही-अन्दर बालीगंज में लाख रुपये की इमारत खड़ी की है। इस काम के लिए तो उन्हें रुपये की कमी नहीं होती है।"

यह कहकर काशीकांत वहां रुका नहीं, क्वार्टर से निकलकर ड्यूटी करने चला गया। उस समय उसे नाइट-ड्यूटी बजानी थी।

उस रात निर्मला की आंखों से नींद दूर ही भागती रही। कलकत्ते से इतनी दूर आकर पति के घर की गृहस्थी संभालने के संदर्भ में उसे जो अनुभव प्राप्त हुए, इससे उसमें जीवन के प्रति वितृष्णा का भाव पैदा हो गया। किसी तरह रात गुज़ारकर सुबह जब वह सोकर उठी, तो काशीकांत ड्यूटी से वापस आ चुका था। इस समय वह और ही तरह का आदमी था। कल शाम जिस व्यक्ति ने इतना झगड़ा-झंझट किया था, इस समय वह जैसे कोई दूसरा ही व्यक्ति था।

निर्मला समझ गई कि आज काशीकांत को बतौर घूस मोटी रकम हासिल हुई है।

वह बोला, "आज मांस खरीद लाता हूं, आज मांस खाऊंगा। बहुत दिनों से मांस नहीं खाया है।"

निर्मला जानती थी कि जिस दिन इस आदमी के हाथ में रुपया आएगा, उसी दिन मांस-मछली-अंडे सब-कुछ एक साथ आएगा और अकेली निर्मला को ही रसोईघर में बैठकर सब-कुछ पकाना होगा।

काशीकांत खाने में भी उस्ताद था। एक तो वह खुद लालची आदमी था, बाहर के आदमी से जिस तरह रिश्वत लेता था, बहुत-से बहाने बनाकर उनसे पैसा वसूलता था, उसी तरह खर्च भी वह खुले हाथों करता था।

उसके बाद जब आय नहीं होती तो वह और ही तरह का आदमी हो जाता था। तब उसका दिमाग गरम रहता था। वह चिल्ला-चिल्लाकर बोलता था, सबसे रगड़ा-झगड़ा करता था। उस अरसे में निर्मला के लिए जीना हराम हो जाता था।

निर्मला कहती, "तुम इतना चिल्लाते क्यों हो? चिल्लाने की बात ही क्या है?"

काशीकांत कहता, "चिल्लाऊं नहीं? दाल में नमक न रहे तो आदमी

कही खाना खा सकता है ? तमाम रात खटने के बाद आराम से खाना खाऊं, यह भी तुम नही होने देती हो।"

यह कहकर चावल की थाली अलग हटाकर खड़ा हो जाता था।

ये सब रोजमर्रा की बातें थी। निर्मला के दाम्पत्य जीवन की शुरुआत इसी तरह हुई। मा कलकत्ते से खत लिखती : बेटी निर्मला, बहुत दिनों से तुम्हारा समाचार नही मिला है। तुम और काशीकांत कैसे हो, इसकी सूचना देते हुए खत लिखो। तुम्हारा समाचार न पाने के कारण मन बड़ा ही घबराता रहता है, इत्यादि···

मा का खत मिलता तो निर्मला उसे बार-बार पढ़ती, पढ़कर उसे फाड़ डालती थी। मां का खत काशीकात पढ़े, निर्मला यह नही चाहती थी। मां के खत में परिवार के विषय मे बहुत-सारी बातें रहती थी, "चाचाजी जिस तरह दिन-दिन बिगड़ते जा रहे हैं, पैसे के लिए बाबूजी पर कितना ज़ोर-जुल्म करते हैं···चाचा जी के अत्याचार से बाबूजी किस तरह घबराहट मे रहते हैं, इस बात का उल्लेख रहता था इतना कर्ज करके मकान बनाना शुरू किया, मगर अब तक काम खत्म नहीं हुआ है। सीमेण्ट की कीमत दिन-दिन बढ़ती जा रही है, राजमिस्त्री की मज़दूरी पहले से बहुत अधिक बढ गई है। नये सिरे से दुबारा कर्ज लिए बगैर मकान का काम पूरा नहीं हो सकेगा। तुम्हारे बाबूजी के रिटायर होने का वक्त भी करीब आ चुका है। अब क्या करू, यही सोचती रहती हू "

१४

केशव बाबू का जीवन इसी ढर्रे पर चल रहा था। सवेरे दफ्तर जाते थे और ढेर सारी फाइलें साथ लिए घर लौटते थे। सुबह से शाम तक अथक परिश्रम करके कर्ज चुकाने की जी-जान से कोशिश करते थे। सोचते थे, लड़कों के विवाह मे लिया हुआ कर्ज तथा मकान बनवाने के सिलसिले में ईंट, सीमेण्ट और लकड़ीवाले से लिए हुए उधार का जिस दिन भुगतान हो जाएगा, उस दिन वे मुक्ति की सास ले सकेंगे, अपने बालीगंज के मकान में जाकर आराम से जीवन जियेंगे।

गृहस्वामी को खिला-पिलाकर जब विदा कर देती, गृहस्वामिनी अधवने मकान के पास रिक्शे से पहुंचती थी।

अब मकान की छत किसी तरह बन चुकी थी। स्वयं खड़ी होकर मिस्त्री वगैरह कामगरों के कामों की निगरानी करती थी।

अपनी पसंद की योजना थी, अपनी चेष्टा से बनवाया हुआ मकान। घर न होकर स्वर्ग हो जैसे। उसी स्वर्ग को अपने हाथों से तैयार करने में गृहिणी को बड़ा ही सुख मिलता था। दिन-भर उसी ख्याल के इर्द-गिर्द चक्कर काटने में उसे बड़ा ही अच्छा लगता था।

तीसरा पहर आते-न-आते घर लौट आती थी। आते ही रात की रसोई का प्रबंध करती थी। गृहिणी को सारा प्रबंध अपने हाथों से ही करना पड़ता था। पहले फिर भी एक लड़की थी। वह मां की थोड़ी-बहुत सहायता करती थी। मगर निर्मला के विवाह के बाद से वह सहायता भी नहीं मिल रही थी। जूते की सिलाई से चंडी-पाठ तक उसे अकेले ही करना पड़ता था। लौटते वक्त वह बाजार होकर आती थी। आलू, प्याज, साग जो कुछ भी सामने दीख जाता, खरीदकर ले आती थी। केशव बाबू की पत्नी बड़ी ही कुशल गृहिणी थीं। केशव बाबू को चूंकि उस तरह की पत्नी मिली थी इसलिए वे उस यात्रा में टिक गए, अन्यथा क्या होता, कुछ कहा नहीं जा सकता। उन दिनों दफ्तर के कामों का दबाव भी इतना बढ़ गया था कि इधर-उधर ताकने की भी फुर्सत नहीं मिलती थी। जब वह घर लौटते तो थकान से चूर-चूर हो जाते थे। गृहिणी भी उनकी तुलना में कम थकी-मांदी नहीं रहती थी।

किन्तु जब तक आंखों में नींद नहीं उतरती, तब तक वह मकान, ईंट, लोहा, सीमेण्ट के बारे में बातें करती रहती थी। गृहिणी कहती, "जानते हो, दस बोरे सीमेण्ट और चाहिए…"

केशव बाबू कहते, "तुम जब कि कह रही हो, सीमेण्ट खरीदना ही होगा।"

गृहिणी कहती, "इतने सीमेण्ट की जरूरत नहीं पड़ती, मिस्त्रियों ने कहा था, पिछला हिस्सा यों ही छोड़ दें, सिर्फ ईंटों की गुंथनी कर देने से काम चल जाएगा। मैंने कहा, जब इतना-इतना खर्च हो ही चुका तो दस बोरा सीमेण्ट

कम करने से ही कौन-सी बचत हो जाएगी ? इसके अलावा वहां एक चाल बना दी जाए तो सरो-सामान रखने में सुविधा होगी। टोकरी, कुदाल, उपले, कोयला वगैरह रखने के लिए एक कमरा चाहिए न…"

केशव बाबू कहते, "सो चाहिए ही।"

"हां, और जब दोमंजिला बन जाएगा तो वह कमरा किरायेदार के काम में आएगा। किरायेदार को आलतू-फालतू सामान रखने के लिए कोई जगह चाहिए न?"

सचमुच केशव बाबू की गृहिणी कितनी ही तरह की योजनाएं बनाया करती थी।

आदमी कितना सपना देखता है ? उसी सपने को सार्थक बनाने के लिए लोग कितनी साधना करते हैं ? लेकिन केशव बाबू की पत्नी का एकमात्र सपना वही था। चौबीस घंटा मकान बनवाने के सिवा सोचने के लिए जैसे कोई दूसरी बात थी ही नहीं। नींद में भी शायद घर के ही बारे में सोचती रहती थी। सोचती, छत की कंक्रीट की ढलाई हो चुकी है, कहीं दरार तो नहीं पड़ जाएगी। या सोचती थी, हो सकता है कल सुबह ही ईंटवाले को तीन सौ रुपया देना पड़े। उन दिनों ईंट की दर थी तीस रुपये हजार। मकान बनवाने के कारण पूजा के अवसर पर कपड़े तक नहीं खरीदे थे। आलू के भुर्ते के साथ चावल खाकर या महीने में दो दिन दो-चार आने की झींगा मछली खाकर वह सधवा की मर्यादा का पालन करती थी।

अगर केशव बाबू उस सन्दर्भ में कोई बात करते तो गृहिणी उत्तर देती, "पहले मकान बन जाए, कर्ज चुक जाए, तब फिर जी-भर कलिया-पोलाव खाना। अभी थोड़ी तकलीफ उठाओ…"

हाय रे घर ! इस घर की एक-एक ईंट में गृहिणी के प्राण थे। इसकी हर ईंट की खुद परख करने के बाद ही मिस्त्रियों को ईंट गूथने दी थी। वैशाख-जेठ की तीखी धूप और सावन-भादों की मूसलाधार बारिश को गृहिणी ने अपने माथे पर झेला था।

स्वामी-देवर को खिला-पिलाकर, उन्हें आफिस-कालेज भेजकर, तेज कदमों से धूल और कीचड़ के बीच पैदल चलती हुई वह टालीगंज के जलमय जंगल में मकान बनवाने जाती थी।

उन दिनों वालीगंज में जलमय जंगल ही था। एकाध मील के दायरे में किसी का भी मकान नजर नहीं आता था। एक रिक्शा तक उधर नहीं दीखता था। इसलिए धूल-कीचड़ लांघते हुए जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

केशव वावू कहते, "तुम अकेली मिस्त्रियों से काम कराने जाती हो? मुहल्ले वाले इस पर कानाफूसी तो नहीं करते?"

गृहिणी कहती, "मुहल्ले वालों की मैं परवा नहीं करती। मुझे अगर भूखों रहना पड़े तो मुहल्ले वाले मुझे खाना देंगे?"

वासु का उत्पात दिन-दिन बढ़कर सारे किए-कराए पर पानी फेर रहा था। स्कूल का नाम कहकर वह कहां जाता है, स्कूल की फीस लेकर वह जमा करता है या नहीं, इसका भी कोई ठीक नहीं रहता। पूछने पर भी वह कुछ नहीं वताता था।

वासु मैट्रिक की परीक्षा में दो वार फेल हो चुका था, तीसरी बार किसी तरह पास हुआ। वासु की सफलता की वात सुनकर केशव वावू अवाक् हो गए थे। एक दिन मुलाकात होने पर पूछा, "क्यों जी, तुम कहां रहते हो? तुम्हारा चेहरा तो मुझे नज़र आता ही नहीं। क्या करते हो? कहां का चक्कर लगाते रहते हो?"

उस वात का जवाब दिये बिना वासु वोला, "मैं कालेज में दाखिला लूंगा। आई० ए० में नाम दर्ज कराऊंगा।"

"आई० ए० पढ़ने से क्या होगा?"

"आई० ए० पास करने के वाद वी०ए० का कोर्स पढ़ूंगा। वी० ए० पास करके ग्रेजुएट वनूंगा। ग्रेजुएट होने से नौकरी मिलेगी।"

केशव वावू वोले, "मैट्रिक पास करने में ही तुमने तीन वरसों का अरसा गुज़ार दिया। इसके वाद कितने वरसों में आई० ए० पास करोगे या ग्रेजुएट ही कितने वरसों में होगे? व्यर्थ ही पैसा वरवाद करने के वजाय कुछ दूसरा ही काम करने के वारे में सोचो। तुम अगर कहो तो कोशिश-पैरवी कर तुम्हें किसी कारखाने में रखवा दूं।"

मगर वासु एक ही वात पर दृढ़ था। वह छोड़ने वाला जीव नहीं था। वोला, "पहले ग्रेजुएट हो लूं, उसके वाद विलायत जाऊंगा।"

"विलायत जाओगे ?" वासु की बातें सुनकर केशव बाबू विस्मय से अभिभूत हो गए। वासु तो कम महत्त्वाकांक्षी नहीं।

रात में गृहिणी से बातें की, "उसमें बड़े बनने की जब इतनी इच्छा है तो पैसा दे दो न। वासु अगर योग्य हो जाए तो हम लोगों के ही वंश का मुख उज्ज्वल होगा।"

गृहिणी बोली, "तुम पागल हो गए हो ? वह दुश्चरित्र लड़का किसी दिन आदमी बन सकता है ? व्यर्थ ही तुम्हारी गाढ़ी कमाई का पैसा बरबाद होगा..."

केशव बाबू बोले,"नहीं-नहीं, उसका कहना है कि पास करके वह विलायत जाएगा। अगर ऐसा कर सके तो अच्छा ही रहे।"

गृहिणी बोली, "पैसा तुम्हारा है, उसे तुम अपने भाई के लिए खर्च करोगे, इसमें मेरे लिए कहने की बात ही क्या है। पैसा मैं दे देती हूं। रुपये की ज़रूरत है?"

"तुम नाहक ही इतना बिगड़ रही हो। मरने के समय बाबूजी उसकी देख-रेख करने की कह गए थे। वे स्वर्ग में बैठे-बैठे सब कुछ देख रहे हैं।"

गृहिणी ने किसी प्रकार की दुविधा ज़ाहिर नहीं की। नोटों का एक बंडल झट से पटककर रसोईघर की ओर चली गई।

गृहिणी को क्रोध में पाकर केशव बाबू उसके पीछे-पीछे वहीं चले गए। "अजी, तुम बिगड़ क्यों रही हो ?" उन्होंने कहा, "अगर वह आई० ए० पास नहीं कर सके तो उसके बाद पैसा मत देना..."

गृहिणी तब बेहद झंझटों के बीच घिरी थी। उसी दिन मिस्त्री को खासी मोटी रकम देनी थी। वह रकम कहां से आएगी, इसकी चिन्ता तब उसके मस्तिष्क को जकड़े हुई थी। बोली, "जानते हो, तीन-तीन बार कोशिश करने के बाद वह किसी तरह पास हुआ है। तुम्हारा यह भाई अगर कभी आई० ए० पास कर जाए, तो मैं अपनी गलती स्वीकार कर इस घर से चली जाऊंगी। मैं यह कहे देती हूं..."

पता नहीं क्यों, केशव बाबू के अन्तर के किसी कोने में वासु के लिए असीम मोह-ममता और स्नेह छिपा हुआ था। अहा, मां अगर जिन्दा रहती तो वासु इस तरह का नहीं होता। गृहिणी गृहस्थी की देख-रेख करेगी या घर के

मिस्त्रियों से काम लेगी या कि वासु की देख-रेख करेगी ? इसलिए उसे ही कैसे दोषी माना जाए ? और केशव बाबू स्वयं अपने दफ्तर के कामों में ही व्यस्त रहते हैं। फिर घर में उसकी देख-रेख करने के लिए है ही कौन ?

अन्ततः वासु कालेज में दाखिल हुआ।

कालेज में दाखिला तो हुआ जरूर, किन्तु दाखिला होना ही सब-कुछ नहीं है। किताबें खरीदनी हैं और उसके लिए पैसे चाहिए। जब जब पैसे की ज़रूरत पड़ती, वासु मांग लेता था।

केशव बाबू बीच-बीच में ज़ाहिर करने लगते थे, "दो दिन बाद अगर किताब खरीदोगे तो काम नहीं चल सकता है ?"

वासु कहता, "क्लास में पढ़ाई शुरू हो गई है। बिना किताबें खरीदे प्रोफेसरों का लेक्चर फालो नहीं कर सकूंगा।"

और न केवल किताब ही खरीदने के लिए पैसा चाहिए, उसके साथ ही कापी, नोटबुक, टिफिन, ट्राम-बस का किराया, लाइब्रेरी का चन्दा, कालेज का मासिक शुल्क—कुल मिलाकर काफी पैसे चाहिए।

गृहिणी आक्रोश से उबलती रहती थी। "गोबर में घी ढाला जा रहा है, यह बात मैं तुमसे कह देती हूं..."

केशव बाबू सांत्वना के स्वर में कहते, "दो ही साल की तो बात है, दो साल किसी तरह तकलीफ उठाकर गुज़ार दो, उसके बाद अगर पास करे तो देखा जाएगा।"

गृहिणी बिना खाए, बिना पहने केवल ईंट, लकड़ी और सीमेंट के पीछे पैसा खर्च करती थी। उसके चौबीसों घंटे का एक सपना था—घर और घर ! मकान के लिए जीवन न्यौछावर करने में भी गृहिणी जैसे पीछे पांव नहीं रखेगी।

मकान जब करीब-करीब तैयार हो गया, अचानक एक दिन घर लौटने पर केशव बाबू ने अपनी पत्नी को बिस्तर पर लेटा हुआ पाया।

देखते ही वे भय से सिहर उठे। पूछा, "क्या हुआ ? सोई हुई क्यों हो ?"

शुरू में गृहिणी ने कुछ भी नहीं बताना चाहा। हमेशा से वह चुप्पा किस्म की औरत रही है। अपनी किसी तकलीफ को कभी भी जाहिर नहीं होने दिया है। ज्वर होने से भी कभी अपने मुंह से नहीं कहती थी कि ज्वर है।

लेकिन अब गृहिणी की भी उम्र हो चुकी है। एक हाथ से रसोई वगैरह का काम करना और दूसरे से मकान का काम करना क्या आसान है? गृहिणी महीनों से यही करती आई है। शाम के वक्त केशव बाबू ने कभी भी अपनी पत्नी को बिछावन पर लेटे हुए नहीं देखा था। सोचा, हो सकता है बासु कोई कांड कर बैठा हो…

पूछा, "बासु कहां है? कालेज से लौटकर आया है या नहीं?"

गृहिणी उसी तरह आंख मूंदे पड़ी रही और बोली, "मुझे मालूम नहीं है…"

"आज खाना खाकर कालेज गया था या सुबह से घर लौटा नहीं है?"

गृहिणी बोली, "तुम्हारे भाई की खबरें मुझे कैसे मालूम हो सकती हैं? कहां रहता है, क्या खाता है, कालेज जाता है या नहीं—यह सब मुझसे क्यों पूछते हो?"

केशव बाबू ने सोचा कि गृहिणी गुस्से में है।

उसके बाद गृहिणी के माथे को छूकर देखा। गरम-गरम जैसा लग रहा है। "डाक्टर साहब को बुला लाऊं?" केशव बाबू ने पूछा।

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं-नहीं, मेरा पैसा इतना सस्ता नहीं है। उसी पैसे से बल्कि मैं एक बोरा सीमेंट खरीद लूंगी।"

उस रात केशव बाबू दुबारा कुछ नहीं बोले।

लेकिन रात किसी तरह बिताकर सवेरे नींद टूटते ही पत्नी के पास आए। "अभी कैसी हो?" उन्होंने पूछा।

गृहिणी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

फिर उन्होंने देर नहीं की। मुहल्ले के एक डाक्टर को जाकर तुरन्त बुला लाए। डाक्टर ने अच्छी तरह जांच की और प्रिस्क्रिप्शन लिख दिया।

केशव बाबू प्रिस्क्रिप्शन लेकर सीधे दवा की दुकान की तरफ भागे।

डाक्टर की बात सुनने में उसे अच्छी नहीं लगी। उनकी पत्नी को आराम करना होगा। लेकिन आराम करे तो फिर चले कैसे? उन्हें आफिस और बासु को कालेज जाने के समय चावल बनाकर कौन खिलाएगा? मिस्त्रियों के बकाए का भुगतान कौन करेगा? कण्ट्रैक्टर की चोरी कौन पकड़ेगा?

वे गृहिणी के पास आकर बोले, "जानती हो, डाक्टर साहब ने तुम्हें कई दिनों तक लेटकर रहने को कहा है।"

वह भला लेटकर रहने वाली औरत है ! उसी ज्वर की हालत में एक दिन बिछावन छोड़कर उठ बैठी, और और दिनों की तरह चूल्हा सुलगाकर उसने सबके लिए रसोई बनाई और खुद भी खाना खा लिया।

और ठीक उसके दूसरे ही दिन तापमान बढ़कर हो गया एक सौ तीन। सो जो ज्वर बढ़ा तो फिर कम होने का नाम ही नहीं लिया। यहां तक हालत हो गई कि प्रलाप करने लगी। उसके बाद जो भी डाक्टर सामने मिला, उसी से दिखाकर केशव बाबू ने आखिरी कोशिशें कीं।

लेकिन तब रोग असाध्य हालत में पहुंच चुका था। लड़की और दामाद को तार भेजा गया। वे भी आए। लेकिन तब तक सब समाप्त हो चुका था। आखिरी घड़ी में वह निर्मला को वह एक बार देख भी नहीं सकी। गृहिणी विदा हो गई। अपनी उत्कट अभिलाषा की गृहिस्थी, खून-पसीने से सींच-सींचकर बनाया हुआ मकान—सब कुछ छोड़-छाड़कर, मांग में सिंदूर लिए वह विदा हो गई।

१५

यही है मकान बनने के पूर्व का इतिहास !

केशव बाबू बचपन से ही स्कूल-कालेजों में फर्स्ट-सेकंड-थर्ड होते आ रहे हैं। उन्हें हमेशा इनाम मिलता रहा है। अपने गुणों के बल पर ही उन्हें नौकरी मिली है। जीवन में उन्नति करने के लिए किसी की खुशामद नहीं करनी पड़ी। सिवा आफिस के बड़े साहब के वे जीवन में किसी से डरते भी नहीं थे। यहां तक कि कभी पैसा भी बरबाद नहीं किया। कहीं आखिरी समय में अधिक दुरवस्था का सामना करके दूसरे के सामने हाथ न पसारना पड़े, यह सोचकर बहुत ही संभलकर खर्च करते आए हैं। नौकरी की ज़िन्दगी में जो होने का हो, लेकिन रिटायर होने के बाद उन्हें स्वस्थ जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो, यही सोच रखा था।

वे शुरू से ही नियम के पाबन्द रहे हैं।

पान-बीड़ी, सिगरेट, चाय, सुंघनी, तम्बाकू वगैरह कभी इस्तेमाल नहीं

करते थे। बचपन में विद्यासागर की पुस्तक में जो कुछ पढ़ा था, उसका अक्षरशः पालन किया था। जीवन में वे कभी झूठ नहीं बोले। दफ्तर पहुंचने में किसी भी दिन देर न की, कभी गैरहाजिर भी नहीं रहे।

दफ्तर के बड़े साहब से शुरू कर चपरासी तक को यह पता था कि केशव बाबू के जैसे आदमी विरले ही हुआ करते हैं। बड़े साहब हर काम के लिए मुखर्जी को बुला भेजते थे।

मुखर्जी से बगैर पूछे बड़े साहब एक भी काम नहीं करते थे। मुखर्जी से परामर्श किए बिना वे एक भी पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करते थे।

कितने अज्ञात, अनजाने और अजनबी आदमियों की इन्होंने कितनी भलाई की थी, उसकी भी शायद कोई गिनती नहीं है।

उसके बाद उनके सामने मकान की समस्या थी। वह समस्या कितनी जटिल थी, दफ्तर में मिलने-जुलने वाले इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते हैं।

मुखर्जी साहब शांत-शिष्ट व्यक्ति हैं। उनमें गुस्सा नाम की चीज नहीं है, वे जल्दीबाजी में नहीं रहते, कभी ऊबते तक नहीं हैं। चाहे बड़ा हो या छोटा, सबसे एक-जैसा बर्ताव करते हैं।

लोग कहते, "मुखर्जी साहब सचमुच एक आइडियल आदमी हैं।"

लेकिन उनके अन्दर कितनी अशांति थी, बाहर से उसका किसी को पता तक नहीं चलता था। किसी को पता भी नहीं था कि उनके घर के अन्दर एक बियाबान है। कभी उन्होंने अच्छा कुरता नहीं पहना, अच्छा खाना नहीं खाया, कभी सिनेमा-थियेटर देखने में पैसा बरबाद नहीं किया। फिर भी जो कुछ प्राप्त हो सका और मन लगाकर जो नौकरी की, उसका श्रेय उनकी पत्नी को ही है। पत्नी के कठोर अध्यवसाय, अमानवीय श्रम और मितव्ययिता के परिणाम-स्वरूप ही सब-कुछ संभव हो सका था। पत्नी ने एक ही सपना देखा था और वह यह कि बालीगंज में उन लोगों का अपना एक मकान हो।

अन्ततः वह मकान बनकर तैयार भी हो गया, लेकिन उसमें उनका गृह-प्रवेश नहीं हो पाया। गृह-प्रवेश के पूर्व ही उसे पृथ्वी के ग्रह से विदा होना पड़ा।

जो होना था, हुआ। उसके लिए दुनिया बैठी नहीं रहेगी। दुनिया किसी के भी सुख-दुख की परवा किए बिना आगे बढ़ती रहती है। वह अपने ही रास्ते पर आगे बढ़ती जाती है, अपने मन से ही चलती है।

इसलिए पत्नी के देहावसान के बाद भी केशव बाबू को ज़िन्दा रहना पड़ा।

इतना ज़रूर था कि ज़िन्दा न रहना ही उनके लिए अच्छा होता। लेकिन आदमी आत्महत्या तो करने नहीं जाएगा। इसीलिए एक दिन पुरोहित बुलाकर गृह-प्रवेश का कार्य भी उन्होंने सम्पन्न कर लिया।

नया मकान, बिल्कुल अव्यवहृत।

उस दिन घर के अन्दर जाते ही केशव बाबू रो दिए। लेकिन किसी के देखने के पूर्व ही आंखों को हाथ से पोंछ लिया।

सचमुच, बूढ़े आदमी को रोना नहीं चाहिए। रोना उसके लिए अपराध है। जिस दिन पत्नी की मृत्यु हुई, उस दिन भी वे रोए नहीं थे। पत्नी ने जब उनके सामने आखिरी सांसें लीं, उस वक्त भी वे रोए नहीं। उनकी लड़की निर्मला फूट-फूटकर रो दी थी। उसके रोदन से मुहल्ला जैसे कांप उठा था। उन्होंने निर्मला को रोने से मना नहीं किया था। सोचा था, रोने दो। उनके बदले लड़की ही अगर रोती है तो पत्नी को, हो सकता है, स्वर्ग में सांत्वना मिले।

उसके बाद श्मशान। सारा काम वासु ने ही किया।

पता नहीं, कहां से लंबे-लंबे बालों वाले अपने दोस्त-मित्रों को ले आया और वे लोग 'राम नाम सत्य है' कहते हुए 'भाभी' को श्मशान ले गए।

वहां भी केशव बाबू को कुछ नहीं करना पड़ा। पैसा खर्च करके वे ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गए और गंगा के किनारे चुपचाप बैठे रहे। अतीत की तमाम बातें जैसे-तैसे उन्हें याद आने लगीं।

इतनी उत्कट अभिलाषा का घर। उस घर में वह एक रात भी नहीं रह सकी। हालांकि जब शादी हुई थी, उसी समय से एक-मात्र यही बात कहती आई थी कि मैं कलकत्ते में—बालीगंज में—एक मकान बनवाऊंगी····

कलकत्ते में मकान बनवाने के प्रति उनके मन में इतना आग्रह क्यों था, केशव बाबू यह बात समझ नहीं सके थे। कलकत्ते में जिन लोगों का अपना मकान नहीं है, जो किराए के मकान में रहते हैं, वे लोग क्या आदमी नहीं हैं?

पूछने पर कहती थी, "मकान बनवाऊंगी तो तुम्हीं लोगों के उपयोग में

आएगा, तुम लोगों की सुविधा के लिए ही यह मकान बनवा रही हूं···"

केशव बाबू कहते, "मकान बनते ही झंझटों की शुरुआत होगी। आज इसे हटाओ, कल इसे मरम्मत कराओ, यही सिलसिला चलता रहेगा। किराए के मकान में ही अच्छी तरह से हूं।"

"नहीं। गृहिणी के बाप-भाई किराएदार हैं, सगे-सम्बन्धी किराएदार हैं। शायद उन्हीं लोगों पर रौब गालिब करने के ख्याल से गृहिणी में यह व्यर्थ की इच्छा जगी थी।"

लेकिन गृहिणी को यह पता नहीं था कि केशव बाबू के जीवन की शेष अवधि में यह मकान ही उनके लिए काल साबित होगा। यह मकान ही उनके जीवन की सबसे बड़ी अशांति होगी।

एक दिन अचानक लड़की ने कमरे के अन्दर आकर कहा, "बाबूजी, मैं जा रही हूं।"

केशव बाबू क्या कहें ! बोले, "जा रही हो ? अच्छा, तो जाओ।"

बात तो सही है, लड़की को इसलिए ब्याहा है कि पराया घर सभाले। अतः वह अपनी गृहस्थी छोड़कर यहां कब तक पड़ी रहेगी।

जाते वक्त निर्मला ने पूछा, "आप इस मकान में अकेले कैसे रहिएगा ?"

केशव बाबू बोले, "तुम इसके लिए मत सोचो। मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। मेरे कष्ट की बाबत सोचकर तुम कब तक यहां पड़ी रहोगी ?"

"मगर आपकी देख-भाल कौन करेगा ?"

"तारक। तारक है, वही मेरी देखभाल करेगा।" केशव बाबू ने कहा।

तारक तब नया-नया था। यह भी शायद ईश्वर का एक तरह का दान ही है। नहीं तो जिस समय उन्हें अपनी देखभाल करने के लिए आदमी की कमी हुई, ठीक उसी समय उनके जीवन में वह कहां से आकर उपस्थित हो जाता ?

निर्मला बोली, "इससे अच्छा तो यही होगा कि आप इस मकान को किराये पर लगाकर हम लोगों के साथ चलें।"

केशव बाबू तब रिटायर हो चुके थे। उस समय उनके लिए कलकत्ता या नीमपुरा एक-जैसा ही था। निर्मला के पास जाने की इच्छा भी थी। जीवन भर कलकत्ते से कहीं बाहर नहीं गए थे। उनके लिए नौकरी ही ध्यान-ज्ञान

जप-तप सब कुछ था। लड़की इस तरह कह रही है, चलना चाहिए। शायद मन में ऐसी इच्छा जगी भी थी।

लेकिन इसी बीच वासु कहीं से आ टपका।

आते ही निर्मला ने उससे कहा, "चाचा जी, बाबू जी को मैं अपने साथ लिए जा रही हूं।"

बात सुनते ही वासु चिहुंक उठा, "क्यों? भैया चले जाएंगे तो घर पर निगरानी कौन रखेगा? इतनी बड़ी प्रोपर्टी की देख-रेख कौन करेगा?"

निर्मला बोली, "क्यों, आप…"

"मैं? लगता है जैसे मुझे अपना कोई काम नहीं है! दिन-भर बैठे-बैठे मैं घर की रखवाली करता रहूंगा? फिर मेरा काम कौन कर देगा?"

कुछ देर चुप रहने के बाद भतीजी की ओर देखता हुआ बोला, "देखो, इस मकान पर नज़र मत गड़ाओ। क्या सोचा है कि भैया को अपने साथ ले जाकर इस मकान को हथिया लोगी? लगता है, काशीकांत ने तुम्हें यह सब पाठ पढ़ाया है।"

केशव बाबू ने देखा कि अभी दोनों में झगड़े की शुरुआत हो जाएगी। उसके पहले ही उन्होंने वासु को टोका।

"तुम यह सब क्या कह रहे हो? मेरी यह हालत देखकर ही ऐसी बातें कर रहे हो?"

"आप नहीं जानते हैं भैया, आप सीधे-सादे आदमी हैं, अभी आपको मंत्रणा देकर अपने पास ले जाना चाहती है, जिससे कि काशीकांत आपका रुपया-पैसा और मकान हथिया सके, ये लोग सोचते हैं कि मैं जैसे कुछ समझ ही नहीं रहा हूं।"

काशीकांत अब तक खड़ा होकर सब सुन रहा था। अब वह चुप नहीं रह सका। "देखिए चाचाजी, हम लोग बाबू जी की भलाई की ही खातिर उन्हें ले जाना चाहते थे, अब आप आपत्ति कर रहे हैं, तो फिर हम नहीं ले जाएंगे। बाबू जी यहीं रहें, आपकी मनोकामना पूर्ण हो…"

इतना कहने के बाद काशीकांत वहां रुका नहीं। पत्नी से बोला, "चलो…"

केशवबाबू स्तंभित रह गए। उसके बाद जब अंदर कमरे की ओर जाने को तैयार हुए तो वासु ने कहा, "भैया, आपने मुझे अभी तक रुपया नहीं दिया।"

केशव बाबू रुपए की बात सुनकर चौंक पड़े।

"रुपए किसलिए ?

वासु बोला, "वाह, आप तो भुला ही बैठे। मैंने आपसे कहा था न कि मुझे हज़ार पाच के रुपए चाहिए।"

"हज़ार पाच के रुपए ! ! !"

केशव बाबू जैसे आकाश से गिर पड़े। "अभी मैं पांच हज़ार रुपए कहां से लाऊ ? रुपए किसलिए चाहिए ?"

अब की वासु ही जैसे आसमान से गिर पड़ा हो।

बोला, "वाह, भाभीजी के मरने के पहले से ही आपसे कह रहा हूं, आपने कहा कि अभी तुम्हारी भाभी बीमार हैं, वे अच्छी हो लें तो फिर तुम्हें दूगा। वह बात आप बिलकुल भुला ही बैठे ?"

केशव बाबू ने पूछा, "रुपया लेकर तुम क्या करोगे ?"

"आपसे तो कितनी ही बार बता चुका हू," वासु ने कहा, "फिर भी आप एक ही बात को दुहरा रहे हैं।"

केशव बाबू को वह बात याद आई। बोले, "हां-हां, तुमने कहा था कि दुकान खोलोगे। किस चीज़ की दुकान ?"

"स्टेशनरी की दुकान। पहले पाच हज़ार रुपए से स्टार्ट करूंगा, उसके बाद माल बेचने पर जो पैसा आएगा, उसी पूंजी से फिर नया माल खरीदूगा।"

केशव बाबू ने पूछा, "इसमे महीने मे कितनी आय होगी ?"

"मैंने हिसाब किया है, पहले महीने मे प्रोफिट के तौर पर तीन सौ रुपए मिलेंगे। वही बाद मे हज़ार रुपए तक पहुच जाएगा।"

"दुकान का किराया कितना होगा ?"

वासु बोला, "अगर आपको मुझ पर इतना संदेह हो रहा है तो पैसा मत दीजिए। फिर मुझे पैसे की ज़रूरत नही। मैं अपने मन में सोचूंगा कि मेरे मां-बाप या भाई-बहन कोई नहीं है…"

इतना कह वह गुस्से मे आकर तत्क्षण बाहर निकल गया।

केशव बाबू ने पीछे से पुकारा, "अरे, क्रोध मे मत आओ, सुनो, ओ वासु, सुनते जाओ…"

लेकिन वासु बड़ा ही अभिमानी लड़का है। बचपन से ही इसी तरह का है। कुछ कहने पर क्रोध में आकर तुरन्त घर से निकल जाता है। गुस्से में आकर खाना तक नहीं खाता है। केशव बाबू को उसके लिए जगकर कितनी ही रातें बितानी पड़ी हैं। गृहिणी कितनी ही वार कह चुकी थी कि तुम्हारा यह भाई ही अन्त में तुम्हें परेशान करेगा…"

केशव बाबू गृहिणी को समझाते, "नहीं-नहीं, बात ऐसी नहीं है, बचपन में हर आदमी इसी तरह का क्रोधी होता है, मैं भी मां से बिगड़कर कितनी ही बार बिना खाए रह चुका हूं…"

पर ये सब सांत्वना के ही शब्द थे। केशव बाबू यह सब कहकर अपने ही मन को सान्त्वना देते थे। अहाहा, छुटपन में ही जिसकी मां मर गई है, वैसा भाई है, मां क्या वस्तु होती है इसकी जानकारी नहीं है। यही वजह है कि थोड़ा-बहुत अभिमानी है। बड़ा होते ही ठीक हो जाएगा……

गृहिणी जब चल बसी तो वासु की देखरेख करने वाला कोई भी न रहा। वे दफ्तर से लौटने के बाद तारक से पूछते, "अरे तारक, भैया जी कहां हैं?"

तारक कहता, "बाहर निकल गए हैं।"

केशव बाबू पूछते, "किधर निकला है?"

तारक कहता, "मुझसे कुछ कहकर नहीं गए हैं।"

"कब निकला है?"

तारक कहता, "आपके दफ्तर जाते ही तुरन्त निकलकर चले गए।"

"खाकर गया है या बिना खाए ही?"

तारक कहता, "बिना खाए ही।"

केशव बाबू कहते, "यह क्या रे? बिना खाए ही सुबह के वक्त निकल गया और अब तक वापस नहीं आया? जरा पता लगाओ न।"

लेकिन इतने बड़े कलकत्ता शहर में वह कहां है, इसका पता कैसे चले। प्रायः हर रोज़ इसी तरह का सिलसिला चल रहा था—कभी वह खाना खाता था और कभी बिना खाए ही चला जाता था। कब वह घर से निकलता और कब वापस आता, इसका कोई ठीक नहीं रहता था।

अंत में वह किसी भी हालत में आई० ए० पास नहीं कर सका। एक दिन केशव बाबू वासु के लिए जगकर बैठे रहे। तब रात के बारह बज रहे थे। ज्यों

ही उसने सदर दरवाजे की कुंडी खटखटाई, केशव बाबू ने खुद ही दरवाजा खोल दिया।

शुरू में वासु यह समझ नहीं सका। भाई पर नजर पड़ते ही सिर झुकाकर अन्दर घुस गया। लेकिन केशव बाबू ने छोड़ा नहीं।

'इतनी रात तक तुम कहां थे ?" उन्होंने पूछा।

वासु ने शुरू में कोई उत्तर नहीं दिया। अंत में बार-बार तकाज़ा करने के बाद वह बोला, "दोस्तों से गपशप कर रहा था..."

"दोस्तों से ? दोस्तों से गपशप कर रहे थे ? सुनू तो सही, इतनी रात तक दोस्तों से तुम क्या गप्पें लड़ाते हो ? दिन में गप करते रहने के बावजूद गप खत्म नहीं हुआ ? और, इतने गपशप हो ही क्या सकते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। हम भी भैया, कभी तुम्हारी तरह ही छोटे थे, तुम्हारी जैसी ही हमारी भी उम्र कम थी, लेकिन कभी हम गप करते-करते रात के बारह नहीं बजाते थे। समय पर खाना खाते थे, समय पर सोते थे और पढ़ने के लिए समय पर कालेज भी जाते थे। गपशप में वक्त जाया करने से कोई हाथी-घोड़ा मिल जाता है ? काम न रहने पर मुहल्ले की लाइब्रेरी में अगर किताब पढ़ा करो तो इससे कम-से-कम ज्ञान तो हासिल होगा। कितने ही महान पुरुषों की जीवनियां हैं, उन्हें पढ़-गुनकर बहुत-कुछ सीख सकते हो..."

वासु केशव बाबू की इस तरह की बातें एक कान से सुनता और दूसरे कान से निकाल देता था। उसके बाद वासु जब खाना खाने बैठता, केशव बाबू भी उसकी बगल में बैठ जाते थे। कहते, "क्यों, खाना क्यों नहीं खा रहे हो ? थोड़ा-सा चावल और है, खालो।"

वासु गरदन नीची करके कहता, "मुझे भूख नहीं है।"

"भूख नहीं है—का मतलब ? कुछ खाकर आए हो ? क्या खाकर आए हो ?"

वासु किसी भी हालत में बताने को तैयार न था। आखिर में बहुत दबाव डालने के बाद बताया कि उसने घुघनी और आलू का दम खाया है।

"घुघनी और आलू का दम ?"

सुनते ही केशव बाबू को गुस्सा हो आया। "छि-छिः, बाजार की ये सब गंदी-वाहियात चीजें भी कोई खाता है भला ? जानते नहीं हो कि ये सब चीजें

कितनी गंदी हुआ करती हैं, उनमें कितने कीटाणु रहते हैं? गांठ से पैसे खर्च कर यह सव कोई खाता है? चारों तरफ इतना हैज़ा और पेट की वीमारी फैली है यह जानते हुए भी तुम ये सव चीज़ें खाते हो? तुम्हें डर नहीं लगता? घुघना और आलूदम खाने के लिए पैसे तुम्हें किसने दिए?"

"मेरे दोस्तों ने।"

केशव वावू का मन नफरत से भर गया। "ये दोस्त ही तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगे। जव तुम वीमार पड़ोगे, कोई दोस्त देखने तक नहीं आएगा। इस तरह के वहुत-से दोस्त हैं जिन्हें मैं देख चुका हूं। अच्छे वक्त में वहुत-से दोस्त मिलते हैं लेकिन वुरे वक्त में हाय-हाय, कोई किसी का नहीं होता। यह वात गांठ वांध लो..."

वासु अगर भैया की वात सुने तो उसका जीवन सुखमय हो जाए। लेकिन जिसके भाग्य में सुख नहीं है, वह सुखी हो तो कैसे? उसी वासु में सुमति का उदय हुआ या कुछ और ही विचार जगा, पता नहीं। एक दिन उसने कहा, "मैं स्टेशनरी की दुकान खोलूंगा।"

"स्टेशनरी दुकान—का मतलव? जहां कागज़, कलम, लाउज़ेन्स, विस्कुट, पावरोटी वगैरह मिलते हैं?"

"हां।"

"कितने रुपए लगेंगे?"

वासु ने कहा, "दुकान के लिए पांच सौ पगड़ी देनी है और किराए के रूप में माहवार वीस रुपया है। माल खरीदने में हज़ार पांच के रुपए लगेंगे।"

वात वड़ी अच्छी है। कम से कम वासु में व्यवसाय करने की सुमति तो जगी है, यही शुभ लक्षण है। पांच हज़ार रुपया देने से ही वासु यदि जीवन में खड़ा हो जाए तो वुरा क्या है!

उन दिनों केशव वावू रिटायर हो चुके थे। प्रोविडेण्ट फंड से कर्ज़ लेकर मकान वनवाया था। सो भी उन्होंने नहीं, वल्कि उनकी पत्नी ने वनवाया था। इसकी वजह से ही गृहिणी को सोने के अपने तमाम आभूषण वेचने पड़े थे। लेकिन जिसने मकान वनवाया, वह स्वयं उसका उपभोग नहीं कर सकी।

दुनिया में वहुत-से आदमियों के भाग्य में यही घटित होता रहता है। किन्तु

इसके लिए दुख करने से कोई लाभ तो होता नहीं। किसी की मृत्यु या किसी के अभाव की यह दुनिया परवाह नहीं करती है। वह अपने दावे को पूरा कर ही लेगी, चाहे कोई कितने ही कष्ट के दौर से क्यों न गुज़र रहा हो।

केशव बाबू के साथ भी यही घटित हुआ था। बासु को उन्होंने पांच हज़ार रुपए दिए, इसके अतिरिक्त दुकान की पगड़ी के तौर पर पांच सौ अलग से।

और केशव बाबू अगर न दें तो देगा ही कौन? बासु के अपने और है ही कौन?

रुपया देने के बाद केशव बाबू ने सोचा, अच्छा ही हुआ। अब वे ही और कितने दिनों तक ज़िन्दा रहेंगे! तब यह मकान बासु का ही होगा, बासु ही सब-कुछ का उपभोग करेगा। उसके पहले बासु का ब्याह करना है। हमेशा वह अकेला तो रहेगा नहीं। उसकी भी अपनी गृहस्थी होगी। उसकी गृहस्थी बसाने की ज़िम्मेदारी केशव बाबू पर ही है।

उन दिनों केशव बाबू मन-ही-मन बहुत सपने देखा करते थे।

दूसरे-दूसरे लोग जिस तरह सपने देखा करते हैं, वे भी उसी तरह के सपने देख रहे थे। वे सपना देखते कि बासु की दुकान और भी बड़ी हो गई है—विशाल। दस-बारह आदमियों को नियुक्त कर वह सब का मालिक बन बैठा है। ढेरों पैसा, ढेर सारी संपत्ति का उसने उपार्जन किया है। दुनिया और समाज के बीच भले आदमी-जैसा वह भी एक आदमी हो गया है। मगर तब उन्हें इस बात का पता कहां था कि एक दिन उनके सारे सपने चूर-चूर हो जाएंगे!

१६

तारक शुरू से ही था। एक दिन आकर उसने बताया, "मालिक, एक भले आदमी आपसे मिलने आए हैं।"

"भले आदमी? मुझसे मिलना चाहते हैं? कौन हैं?"

"मालूम नहीं। बूढ़े आदमी हैं, मैं उन्हें नीचे के कमरे में बिठा आया हूं।"

आश्चर्य की बात है। उनसे मिलने के लिए कौन आएगा ? सोचने पर वे कुछ स्थिर नहीं कर सके। नीचे आने पर देखा कि एक बिलकुल ही अजनबी व्यक्ति है।

पूछा, "किससे मिलना चाहते हैं ?"

"जी, आप ही केशव बाबू हैं ?"

"हां," केशव बाबू ने कहा।

"आपके भाई वासव मुखोपाध्याय ने मुझसे किराये पर मकान लेकर दुकान खोली थी—मनिहारी दुकान। आपको इस बात की जानकारी है ?"

केशव बाबू ने कहा, "हां, पता है।"

"वासव बाबू कहां हैं ?"

केशव बाबू ने अवाक् होकर पूछा, "क्यों ?"

"साहब, आपका परिचय देकर मुझसे किराये पर दुकान लेने आया था, इसीलिए मैंने किराये पर लगाया था। लेकिन दो बरसों से आपका भाई मेरे किराये का पैसा नहीं चुका रहा है।" कहते-कहते उस आदमी का चेहरा तम-तमा गया।

"दो बरसों से किराया नहीं दिया है ?" केशव बाबू आश्चर्य में डूबने-उतराने लगे। "मुझे तो इसके विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है, मेरे भाई ने मुझे कुछ बताया भी नहीं है।" केशव बाबू ने कहा।

"मैं जानता था कि आपका सगा भाई है, यही वजह है कि मैंने किराये पर मकान दिया था। पगड़ी के तौर पर एक भी पैसा नहीं लिया था। किराया भी बीस रुपये से कम कर दस रुपया कर दिया था। आखिर में वे मुझे इस तरह ठग लेंगे, मैंने यह सोचा तक नहीं था।" भलेमानस ने कहा।

केशव बाबू के सिर पर जैसे आसमान टूटकर गिर पड़ा हो। पगड़ी के पैसे चुकाने के लिए वासु को उन्होंने पांच सौ रुपये दिये थे। इसके अलावा दुकान के माल की बाबत पांच हजार रुपये अलग से दिये थे। फिर वे रुपये कहां गए ?

"अजी साहब, दुकान कैसे चले ? आधे दिन तक तो दुकान ही नहीं खोलता है। रात में भी दुकान में लड़कियां ले आता है। उसके बाद दरवाजा बन्द करके क्या करता है, ईश्वर जाने !" भले आदमी ने कहा।

कहते-कहते भले आदमी का चेहरा गुस्से से लाल हो गया।

"यही कारण है कि मैंने सोचा कि एक बार आपको इत्तिला कर दूं। इसके बाद जो करने का होगा, मैं करूंगा। मैं आपके भाई के नाम कचहरी में मुकदमा दायर करूंगा, यह कहे देता हूं, जरूरत पड़ी तो दुकान का माल-असबाब, जो कुछ भी मिल जाएगा, कुर्क करा लूंगा। इसके चलते मेरा चाहे जितना भी खर्च हो जाए "

यह कहकर भले आदमी जाने लगे।

केशव बाबू ने जोर-जबरन उन्हें बिठाया। "देखिए, आप भले आदमी हैं और मैं भी भला आदमी ही हूं। एकाएक मामला-मुकदमा दायर मत कीजिए। मैं अपने भाई से बातें करूंगा। देखिए, वह क्या करता है। फिर मैं तो हूं ही, मैं वादा करता हूं कि आपका सारा बकाया मैं चुका दूंगा। आप दो-चार दिनों के बाद दुबारा आने का कष्ट करें।" केशव बाबू ने कहा।

भले आदमी के चले जाने के बाद केशव बाबू का मन बड़ा ही उदास हो उठा। छिः-छिः, वासु अंत में यह कांड कर बैठेगा, इसकी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी।

उन्होंने तारक को पुकारकर पूछा, "छोटे बाबू हर रोज घर आते हैं? हर रोज खाना खा जाते हैं?"

तारक बोला, "कभी-कभी घर में खाना खा जाते हैं और कभी-कभी नहीं खाते हैं।"

केशव बाबू ने गुस्से में आकर कहा, "फिर मुझे इतने दिनों से तुमने बताया क्यों नहीं? मुझे तो यह सब-कुछ मालूम नहीं था।"

तारक अब क्या कहे! वह चुपचाप खड़ा रहा।

केशव बाबू चिन्तित हो उठे। घर में गृहिणी नहीं है। उनकी देखरेख करने के लिए कोई नहीं है। पूरा मकान खाली है। तमाम दिन सोए रहते हैं फिर भी उनका वक्त नहीं कटता है। उसी तरह उनकी समस्याओं का भी कोई अन्त नहीं है। बिजली का बिल ठीक समय पर चुकाना, कारपोरेशन के दफ्तर में ठीक समय पर पैसा दे आना—ये सब भी तो उनके-जैसे बूढ़े आदमी के लिए समस्या ही है। उस पर बाजार से सरो-सामान खरीदकर ले आना। साथ ही साथ खर्च के बारे में भी सोचना पड़ता है। उनके पास रुपये का कोई अशेष

तो है नहीं। मकान किराये पर लगा देने से अच्छा होता, मगर किराये-
कहीं परेशान करने लगे तो फिर क्या होगा ? इसके बजाय शान्ति कहीं
छी चीज़ है। यही कारण है कि मकान किराये पर नहीं लगाया है। सोचा
, दो दिन बाद ही बासु की शादी होगी, तब उन्हें अकेले जीना नहीं पड़ेगा।
ई बहू आकर उनकी देख-रेख करेगी।

लेकिन उनके सारे सिद्धान्त मटियामेट हो गए।

उस दिन वे बासु के लिए रात में जगकर प्रतीक्षा करते रहे।

बहुत रात बीतने के बाद जब बासु आया, उन्होंने खुद जाकर दरवाज़ा खोल दिया।

बासु ने कल्पना तक न की थी कि भैया उसके लिए इतनी रात तक जगे रहेंगे। भैया को देखकर वह शर्मिन्दा हो गया।

केशव बाबू ने तय किया था कि आज वे कुछ-न-कुछ फैसला करके ही छोड़ेंगे।

"इतनी रात तक तुम कहां थे ?" उन्होंने पूछा।

बासु ने पहले सिर झुका लिया। फिर झूठी बातें बताईं, "दुकान में..."

"दुकान में—का मतलब ? अब तक तुम्हारी दुकान है ?"

"हां," बासु ने कहा, "क्यों नहीं रहेगी, है..."

केशव बाबू बोले, "झूठ मत बोलो, तुम्हारी दुकान नहीं रही। तुम्हारी दुकान में माल भी नहीं है। तुम कभी दुकान खोलते भी नहीं हो। मुझे सब मालूम हो गया है। मकान-मालिक को बतौर सलामी पांच सौ रुपये देने हैं— यह कहकर तुम मुझसे जो रुपये ले गए थे, वह भी नहीं दिया है। तुम झ हो..."

इतनी बातें एक साथ कहने के बाद केशव बाबू हांफने लगे।

बासु ने किसी भी अभियोग का उत्तर नहीं दिया।

केशव बाबू बोले, मेरी बातों का जवाब क्यों नहीं दे रहे हो ? जवा बिना आज तुम्हें खाना नहीं मिलेगा। मेरी बात का जवाब दो। बताओ मकान का किराया महीने-महीने क्यों नहीं चुकाया ? झूठ बोलकर ठगा ? तुम्हारी दुकान के मालिक आज मुझे सब-कुछ बता गए हैं। मे का जवाब दिए बगैर आज तुम्हें घर में खाना ही नहीं मिलेगा।"

फिर भी वासु की जबान से एक शब्द न निकला। वह जिस प्रकार चुप होकर खड़ा था, वैसा ही रहा।

"अब चुपचाप खड़े हो? अब भी मेरी बात का जवाब न दोगे? फिर चले जाओ, मेरे घर से चले जाओ। निकलो ..."

वासु अब एक क्षण भी न रुका। जिस दरवाज़े से आया था, उसी दरवाज़े से बाहर चला गया। केशव बाबू हतप्रभ होकर उसी ओर ताकते रह गए। उसके बाद तारक की बात से उनमें चेतना वापस आई।

तारक संभवतः दोनों भाइयों का वार्तालाप छुपकर सुन रहा था।

"छोटे बाबू को जाकर बुला लाऊं, मालिक?" उसने पूछा।

केशव बाबू ने कहा, नहीं, "बुलाने की जरूरत नहीं। वह जहां मर्जी हो, जाए। उसके प्रति मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है। जाएगा कहां? देखना, उसे कहीं ठौर न मिलेगा। वह फिर घर लौट आएगा। तुम खा-पीकर सो रहो ..."

यह कहकर वे दोमंजिले के अपने कमरे में जाकर लेट गए।

लेकिन बहुत देर तक नींद ही नहीं आई। रात के अंतिम पहर में तंद्रा-सी आई। किन्तु किसी आवाज से उनकी नींद टूट गई। वे हड़बड़ाकर उठे और बिछावन पर बैठ गए।

मन उदास हो गया। वासु की याद आने लगी। गुस्से के मारे उन्होंने उसे घर से निकाल दिया। पता नहीं, वह कहां चला गया, कहां रात गुजारेगा, कहां किसके घर में किसके बिस्तर पर सोएगा, क्या खाया है! हो सकता है कहीं जगह न मिलने पर किसी पार्क की बेंच पर सो गया हो। हो सकता है, बहुत ही भूखा हो।

लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें महसूस हुआ कि उन्होंने जो कुछ भी किया है, ठीक ही किया है। वासु को सबक मिलना चाहिए। जीवन-भर वासु उन्हें परेशान ही करता आया है। वासु हमेशा उनका पैसा ही उड़ाता रहा है, हालांकि अब वह बच्चा नहीं है। वासु की जो अभी उम्र है, केशव बाबू उस उम्र में नौकरी कर पैसा कमाते थे। पैसा कमाना क्या आसान बात है? पैसा उड़ाना आसान है, उड़ाने में किसी अक्ल की जरूरत नहीं पड़ती है। लेकिन पैसा कमाते हुए, सहयोगियों से आगे निकल जाना कितने कष्ट से होता है, केशव बाबू से अधिक यह बात किसी को मालूम नहीं। साक्षी था तो एक ही व्यक्ति,

गृहिणी ! सिर्फ उसे ही यह मालूम था, उसने ही देखा था, वही
को समझती थी ।

वह जानती थी इसीलिए उनसे कुछ कहती न थी । उन दिनों परिवार की
म परेशानियों और झंझटों से उन्हें दूर रखकर सारा बोझ उसने अपने
धे पर उठा लिया था । गृहिणी गृहस्थी की देखभाल करती थी और वे मन
गाकर एकमात्र नौकरी का ही काम करते थे ।

नींद टूटते ही उन्होंने तारक को पुकारा ।

पूछा, "छोटे बाबू पिछली रात फिर आए ही नहीं ?"

तारक बोला, "कल आपने खुद ही उन्हें भगा दिया था ।"

केशव बाबू बोले, "सो तो किया, मगर रात भर वह कहां रहा, क्या खाया, यह सब सोचना होगा न ? तुम सड़क पर ज़रा जाकर देख आओ न, अगर कहीं मिल जाए..."

तारक ने कहा, "सड़क पर उन्हें खोजूं ? छोटे बाबू क्या सड़क पर मिलेंगे ? हो सकता है किसी दोस्त के घर पर चले गए हों और रात में वहीं ठहर गए हों ।"

"अगर उसके किसी दोस्त को पहचानते हो तो वहीं चले जाओ । कहना कि मैं उसे बुला रहा हूं । यासु के किसी मित्र के मकान को पहचानते हो ?"

तारक उसके दोस्तों को ही नहीं पहचानता, फिर उनके मकानों को कैसे पहचानेगा ?

फिर भी केशव बाबू ने कहा, "जो हो, तुम एक बार कोशिश करके देखो छोटे बाबू ने जो दुकान खोली है, उसी दुकान में जाकर एक बार देख आओ हो सकता है कि उसी दुकान में जाकर उसने रात गुज़ारी हो । कुछ कहा न जा सकता ।"

तारक चला गया । एक घंटे के बाद लौटकर उसने बताया, "नहीं, नहीं ।"

"मिले नहीं—का मतलब ? वह दोस्तों के घर पर नहीं मिला ?"

तारक बोला, "उनके दोस्तों को मैं पहचानता नहीं हूं । छोटे ब
मनिहारी दुकान ही गया था । वहां कोई नहीं है । दुकान में ताला लटक
अब क्या किया जाए ? जब कहीं है नहीं तो क्या किया जा सकत

दे दी है। आपको यह सूचना नहीं मिली है ? आपको तो मैं सब कुछ खुद जाकर बता आया था, साहब !"

केशव बाबू का विस्मय दुगना हो गया। "आपने उसे निकाल दिया है ?"

"हां, मुकदमा दायर करके निकाल दिया है। कोर्ट से आर्डर पाकर पुलिस की मदद से दुकान पर कब्ज़ा किया। इसे हुए एक साल का अरसा गुज़र चुका है।"

केशवबाबू कुछ देर तक वहां स्तब्ध बैठे रहे।

उसके बाद बोले, "अब क्या होगा ?"

मकान-मालिक ने कहा, "देखिए, आपको सब कुछ साफ-साफ बता रहा हूं। आपके भाई से व्यवसाय नहीं हो पाएगा। यह बात मैं आपसे साफ कह रहा हूं। इतने दोस्त-मित्रों के साथ रात-दिन दुकान में बैठकर अड्डेबाज़ी करने से कहीं दुकान चलती है ? आप सुनकर चकित हो जाइएगा, साहब, कि आपका भाई यार-दोस्तों के साथ दुकान के अन्दर बैठकर शराब पीता था।"

"दुकान में बैठकर शराब पीता था ?"

"हां साहब ! फिर मैं आपसे कह ही क्या रहा हूं ? आपके-जैसे सज्जन भलेमानस का सगा भाई कैसे इस तरह का शैतान हो गया, यही समझ में नहीं आता। मैंने बहुत दिनों तक बरदाश्त किया। लेकिन अब कान पकड़ता हूं साहब। अब नहीं। अब कोट-पैंट और गोरा-चिट्टा देखकर मैं चंगुल में फंसने नहीं जाऊंगा। गोरा-खूबसूरत चेहरा देखकर ही मैंने सोचा था कि भला आदमी है। लेकिन मुझे सबक मिल चुका, साहब। अब नहीं। अबकी जिसे किराये पर मकान दिया है, उससे नकद दस हज़ार रुपये सलामी के तौर पर वसूल लिया है। एक बार बेवकूफी कर चुका हूं, अब उसे दुहराने नहीं जा रहा हूं। अबकी मुझको बहुत बड़ा सबक मिल चुका है..."

केशव बाबू ने कहा, "आपने जो कुछ किया है, अच्छा ही किया है। मैंने भी उसे घर से निकाल दिया है।"

मकान-मालिक ने कहा, "अच्छा ही किया है, साहब। बहुत ही अच्छा। अब उसे घर के अन्दर मत घुसने दें। उसी की भलाई की खातिर उसे घुसने नहीं देना चाहिए। मैं होता तो ऐसे भाई को काटकर दो टुकड़े कर देता। मैं साहब, साफ-साफ कहना जानता हूं, मैं साफ-साफ बातें पसन्द करता हूं।

जो अन्याय करेगा, उसके प्रति मुझमें दया-माया नहीं है। मेरे विचार से उसे सज़ा देनी ही चाहिए।"

केशव बाबू अब वहां रुके नहीं। उठकर खड़े हो गए। उसके बाद सीधे नीचे उतरकर अपने घर लौट आए। साथ में तारक भी आ रहा था, मगर उससे एक भी बात तक न की।

केशव बाबू का मन उसी दिन से व्याकुल था। एक ही भाई है, उसे भी आदमी नहीं बना सके। उनका इतना बड़ा यह दुःख कभी दूर नहीं होगा।

१७

एक दिन अचानक वासु घर लौट आया। रूखे बाल। बहुत दिनों से खाना नहीं मिला। कमीज़ फटी हुई। चेहरा दाढ़ी-मूछों से भरा हुआ। देह सूखकर लकड़ी हो गई थी।

केशव बाबू बोले, "अयं, तुम हो। तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया? इतने दिनों तक कहां थे?"

उसने एक बात का भी उत्तर न दिया।

नहीं दे। केशव बाबू ने तारक को पुकारा और उससे कहा, "खाने का कोई सामान है? नहीं है तो दुकान से कुछ खरीदकर ले आओ।"

यह कहकर उन्होंने उसे पांच रुपये दिए।

उसके बाद वासु से कहा, "जो होने को था, हो चुका, तुम इसके लिए दुखी मत होओ। अभी बाथरूम जाकर नहा-धो लो और कपड़े बदलकर आओ। तारक तुम्हारे लिए खाने का सामान लाने गया है। खाकर सो रहना। उसके बाद चावल बन जाएगा तो तुम्हें जगा दूंगा।"

अन्त में ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। मानो घर का लड़का लौटकर घर चला आया है। वासु ने शान्त-शिष्ट बालक की तरह खाना खाया। खाकर सो गया। केशव बाबू ने उसके लिए बाजार से मांस-मछली मंगवाया। मानो बहुत दिनों के बाद घर में किसी उत्सव की धूमधाम हो रही हो।

नींद टूटने के बाद वासु ने भरपेट चावल खाया। केशव बाबू ने बार-बार

दे दी है। आपको यह सूचना नहीं मिली है? आपको तो मैं सब कुछ खुद जाकर बता आया था, साहब!"

केशव बाबू का विस्मय दुगना हो गया। "आपने उसे निकाल दिया है?"

"हां, मुकदमा दायर करके निकाल दिया है। कोर्ट से आर्डर पाकर पुलिस की मदद से दुकान पर कब्ज़ा किया। इसे हुए एक साल का अरसा गुज़र चुका है।"

केशवबाबू कुछ देर तक वहां स्तब्ध बैठे रहे।

उसके बाद बोले, "अब क्या होगा?"

मकान-मालिक ने कहा, "देखिए, आपको सब कुछ साफ-साफ बता रहा हूं। आपके भाई से व्यवसाय नहीं हो पाएगा। यह बात मैं आपसे साफ कह रहा हूं। इतने दोस्त-मित्रों के साथ रात-दिन दुकान में बैठकर अड्डेबाज़ी करने से कहीं दुकान चलती है? आप सुनकर चकित हो जाइएगा, साहब, कि आपका भाई यार-दोस्तों के साथ दुकान के अन्दर बैठकर शराब पीता था।"

"दुकान में बैठकर शराब पीता था?"

"हां साहब! फिर मैं आपसे कह ही क्या रहा हूं? आपके-जैसे सज्जन भलेमानस का सगा भाई कैसे इस तरह का शैतान हो गया, यही समझ में नहीं आता। मैंने बहुत दिनों तक बरदाश्त किया। लेकिन अब कान पकड़ता हूं साहब। अब नहीं। अब कोट-पैंट और गोरा-चिट्टा देखकर मैं चंगुल में फंसने नहीं जाऊंगा। गोरा-खूबसूरत चेहरा देखकर ही मैंने सोचा था कि भला आदमी है। लेकिन मुझे सबक मिल चुका, साहब। अब नहीं। अबकी जिसे किराये पर मकान दिया है, उससे नकद दस हज़ार रुपये सलामी के तौर पर वसूल लिया है। एक बार बेवकूफी कर चुका हूं, अब उसे दुहराने नहीं जा रहा हूं। अबकी मुझको बहुत बड़ा सबक मिल चुका है..."

केशव बाबू ने कहा, "आपने जो कुछ किया है, अच्छा ही किया है। मैंने भी उसे घर से निकाल दिया है।"

मकान-मालिक ने कहा, "अच्छा ही किया है, साहब। बहुत ही अच्छा। अब उसे घर के अन्दर मत घुसने दें। उसी की भलाई की खातिर उसे घुसने नहीं देना चाहिए। मैं होता तो ऐसे भाई को काटकर दो टुकड़े कर देता। मैं साहब, साफ-साफ कहना जानता हूं, मैं साफ-साफ बातें पसन्द करता हूं।

जो अन्याय करेगा, उसके प्रति मुझमें दया-माया नहीं है। मेरे विचार से उसे सज़ा देनी ही चाहिए।"

केशव बाबू अब वहां रुके नहीं। उठकर खड़े हो गए। उसके बाद सीधे नीचे उतरकर अपने घर लौट आए। साथ में तारक भी आ रहा था, मगर उससे एक भी बात तक न की।

केशव बाबू का मन उसी दिन से व्याकुल था। एक ही भाई है, उसे भी आदमी नहीं बना सके। उनका इतना बड़ा यह दुःख कभी दूर नहीं होगा।

१७

एक दिन अचानक वासु घर लौट आया। रूखे बाल। बहुत दिनों से खाना नहीं मिला। कमीज फटी हुई। चेहरा दाढ़ी-मूंछों से भरा हुआ। देह सूखकर लकड़ी हो गई थी।

केशव बाबू बोले, "अयं, तुम हो। तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया? इतने दिनों तक कहां थे?"

उसने एक बात का भी उत्तर न दिया।

नहीं दे। केशव बाबू ने तारक को पुकारा और उससे कहा, "खाने का कोई सामान है? नहीं है तो दुकान से कुछ खरीदकर ले आओ।"

यह कहकर उन्होंने उसे पांच रुपये दिए।

उसके बाद वासु से कहा, "जो होने को था, हो चुका, तुम इसके लिए दुखी मत होओ। अभी बाथरूम जाकर नहा-धो लो और कपड़े बदलकर आओ। तारक तुम्हारे लिए खाने का सामान लाने गया है। खाकर सो रहना। उसके बाद चावल बन जाएगा तो तुम्हें जगा दूंगा।"

अन्त में ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। मानो घर का लड़का लौटकर घर चला आया है। वासु ने शान्त-शिष्ट बालक की तरह खाना खाया। खाकर सो गया। केशव बाबू ने उसके लिए बाज़ार से मांस-मछली मगवाया। मानो बहुत दिनों के बाद घर मे किसी उत्सव की धूमधाम हो रही हो।

नींद टूटने के बाद वासु ने भरपेट चावल खाया। केशव बाबू ने बार-बार

कर मांस-मछली खिलाया। वासु सब-कुछ साफ कर गया। भैया के एक
ब्द का उसने प्रतिवाद न किया। केशव बाबू ने निश्चिन्तता की सांस ली।
, आहा, बच्चा है, गलती कर बैठा। इस तरह की गलती सभी करते हैं।
के लिए सजा देने से लाभ ही क्या है? वासु के अलावा उनका अपना है ही
न? लड़की की तो शादी हो चुकी है। उसके लिए उन्हें अब कोई चिन्ता
हीं है।

चिन्ता है तो सिर्फ अपने इस भाई के लिए। वे मर जाएंगे तो यह मकान
वासु को ही मिलेगा। वे जब न रहेंगे तो वासु के अलावा कोई भी इस जायदाद
की देखभाल करने वाला नहीं रहेगा। अतः वे मरने के पहले यह देखकर जाना
चाहते हैं कि वासु कम-से-कम आदमी हो जाए।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने वासु को फिर अपने पास बुलाया। बोले, "अब
बहुत दिन हो चुके, कुछ न कुछ काम शुरू करो। हमेशा बैठे रहने से चल नहीं
सकता। क्या करोगे, इस पर सोचा है?"

वासु बोला, "सोच रहा हूं कि टैक्सी का लाइसेन्स ले लूं।"

"टैक्सी का लाइसेन्स? टैक्सी चलाओगे?"

वासु ने हामी भरी।

केशव बाबू अचकचा उठे। अन्त में कुछ सोचकर बोले, "अच्छी बात है।
अपनी चीज खुद ही चलाना अच्छा रहता है। और सम्मान? सम्मान की बात
सोचने से जीवन में कुछ भी नहीं कर सकोगे। बहुत ही अच्छी लाइन के बारे में
सोचा है। मगर लाइसेंस मिल जाएगा? लाइसेंस मिलना क्या इतना आसान है?"

वासु बोला, "मेरे एक मित्र ने कहा है कि वह लाइसेन्स का इन्तज़ाम कर
देगा। उसे हजार-एक रुपया देना पड़ेगा।"

अच्छी बात है। केशव बाबू ने सोचा, आदमी गलती करता है, फिर ए
दिन अपनी गलती को सुधार लेता है। एक बार गलती कर बैठे तो जीवन-
उसे सजा दी जाए, यह ठीक नहीं। और, वासु तो अभी लड़का है, गलती क
उसके लिए स्वाभाविक है।

आखिरकार यही हुआ। केशव बाबू को जो प्रोविडेण्ट फण्ड के रुपये
थे, उन रुपयों में से गिनकर तीन हज़ार वासु को दिए।

वासु उन रुपयों से टैक्सी खरीदकर चलाने लगा।

केशव बाबू ने निश्चिन्तता की सांस ली। सोचा, खैर, इतने दिनों के बाद इसकी बुद्धि में जो सुधार आया है, यही शुभ लक्षण है।

१८

निर्मला अब तक अपने पति के घर में सुख से ही थी। अचानक एक दिन वह कलकत्ता आई। साथ में काशीकान्त था।

काशीकान्त अजीब आदमी है। जैसा पेटू वैसा ही घूसखोर। यो कहा जाए तो दुनिया मे हर कोई पेटू और घूसखोर है। सभी खाने के लिए ही जिन्दा रहते हैं, जिन्दा रहने के लिए कितने लोग खाते हैं? और घूस? कोई नकद लेता है और कोई सरो-सामान के तौर पर। सुना है, गांव के दरोगा को घूस मे अगर नकद रुपया नही मिलता तो बत्तख के अंडे, मचान पर के लौकी-कुम्हड़ा, तालाब की मछलियां—यह सब भी लेता है। लोग तो उसे भी घूस ही कहते हैं। उस जमाने मे लोग बख्शीश देते थे, लेकिन मन मे यह जानते थे कि घूस ही दे रहे हैं।

काशीकान्त के चरित्र मे एक बहुत बड़ा दोष था। वह दोष बड़ा ही खतरनाक था।

और वह था उसकी महत्त्वाकांक्षा। यह महत्त्वाकाक्षा ही सारे अनर्थों की जड़ होती है। काशीकांत की इसी महत्त्वाकांक्षा के कारण निर्मला को बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा। निर्मला को यानी उसके पिता को।

काशीकान्त बहुत दिनों से निर्मला से कहता आ रहा था कि नौकरी करने से कुछ भी नही पाएगा।

निर्मला कहती, "नौकरी न करोगे तो करोगे क्या?"

काशीकान्त कहता, "क्यों, नौकरी के अलावा दूसरा कोई रास्ता नही है? मैं व्यापार करूंगा।"

निर्मला कहती, "व्यापार? किस चीज का व्यापार करोगे?"

काशीकान्त कहता, "किसी भी चीज का व्यापार क्यों न किया जाए, लाभ ही होगा। दो-तीन सौ रुपये माहवार की नौकरी से वह कहीं अच्छा है। उसमें

नी से मेरी जेब में दो-तीन सौ रुपये आ जाएंगे। तब तुम जितना गहना-
चाहो, ले सकती हो। आराम से मोटर पर घूम सकती हो।"
निर्मला कहती, "व्यापार करने के लिए बहुत पैसे की ज़रूरत पड़ेगी।
ना पैसा तुम कहां से लाओगे ?"
काशीकान्त कहता, "यही वजह है कि तुमसे कह रहा हूं। तुम अपने
पताजी से कहकर कुछ हज़ार रुपये का इन्तज़ाम करा दो। तुम्हारे पिताज़ी की
इतनी बड़ी जायदाद है, बालीगंज-जैसी जगह में इतना बड़ा मकान है, प्रोविडेण्ट
फण्ड से भी ढेर-सारा पैसा मिला है। दामाद की भलाई के लिए वे कुछ हज़ार
रुपये नहीं दे सकते ?"
निर्मला कहती, "मैं बाबूजी से पैसे नहीं मांग सकती हूं।"
काशीकांत कहता, "तुम मांग नहीं सकती हो, मगर तुम्हारे चाचा कैसे
मांगते हैं? तुम्हारे चाचाजी ने स्टेशनरी की दुकान के पीछे बाबूजी के बारह हज़ार
रुपये गंवा दिए थे। अब टैक्सी का लाइसेन्स लेकर टैक्सी चला रहे हैं। सुनने
में आया है कि उसके लिए भी तुम्हारे पिताजी ने तीस हज़ार रुपये दिए हैं।
उनके लिए जब इतने-इतने रुपयों का इन्तज़ाम हो सकता है तो तुम तो उनकी
एकमात्र सन्तान हो, तुम्हारे लिए कुछ हज़ार रुपयों का इन्तजाम क्यों नहीं हो
ता ? हालांकि अपने पिता की सारी संपत्ति की हकदार तुम्हीं हो।"
रोज़-रोज़ यही बात सुनते-सुनते निर्मला के कान पक गए थे।
काशीकान्त की बात असत्य नहीं है। पिता के सारे पैसे की उत्तराधिका-
रिणी तो एकमात्र निर्मला ही है। अतः उस पैसे का हिस्सा चाचा को क्यों
मिले ? चाचा जी ही अगर सारे पैसे ले लें तो पिताजी की मृत्यु के बाद उसके
हिस्से में आएगा ही कितना ?
लड़की-दामाद को देखकर केशव बाबू प्रसन्न हुए। वीरान मकान में के
बाबू अकेले ही रहते हैं। लड़की-दामाद के आ जाने से घर में फिर से च
पहल छा गई।
केशव बाबू बोले, "तुम लोगों के आ जाने से मुझमें जिन्दगी आ गई
में अकेले रहना अब अच्छा नहीं लगता, वक्त काटे नहीं कटता है।"
काशीकांत ने कहा, "बाबूजी, आप एक बार हमारे यहां चलिए

काफी खुली हवा मिलेगी। वहां का पानी बड़ा ही अच्छा है, आपकी सेहत ठीक हो जाएगी, तबीयत खुश हो जाएगी।"

"मेरे भाग्य में यह कहां है, बेटा। तुम्हारी सास यह मकान बनाकर मेरे लिए सर्वनाश का बीज बो गई है। मकान किसके हाथों में सौंपकर जाऊं, यही सोचता हूं। यह मकान ही मेरे लिए काल हो गया है।"

सचमुच, अगर यह मकान न रहता तो जब जहां चाहते वे जा सकते थे। किराये का मकान रहता तो वे किसी की परवा नहीं करते। छत पर कहां पानी जमा हो गया है, दीवार की रेत कहां झड़ गई है—यह सब उन्हें नहीं देखना पड़ता। राज-मिस्त्रियों की खुशामद नहीं करनी पड़ती, वे लोग आंखों में धूल झोंक रहे हैं या नहीं—यह सब उन्हें नहीं देखना पड़ता। मकान-मालिक को डांटने-फटकारने से ही बेखटके सारा इन्तजाम हो जाता।

उसके बाद है टैक्स। कलकत्ता-कारपोरेशन के दफ्तर में जाकर टैक्स की बाबत मोटी रकम रिश्वत के तौर पर भी नहीं देनी पड़ती। उसके बाद आज पानी है, तो कल नहीं है। मकान के सामने का कूड़ा-कचरा नियमपूर्वक हटाया नहीं जाता है। अपना मकान न होता तो यह सब बात सोचने की जरूरत ही न थी।

लेकिन अब इस बुढ़ापे में यह सब सोचने से कोई लाभ नहीं। उनकी गृहिणी गृहलक्ष्मी थी। भलाई हो, इसी के लिए वह मकान बनवा गई थी। उन्होंने जब मकान बनवाया, तब उन्हें इसकी जानकारी नहीं थी कि वह इसका उपभोग नहीं कर पाएगी। अगर जानती तो जिन्दगी-भर आधा पेट खाकर, खर्च में कटौती कर, तकलीफ झेलकर यह मकान क्यों बनवाती?

निर्मला ने ही बात पहले छेड़ी, "बाबूजी, इनका कहना है कि नौकरी छोड़कर ये व्यापार करेंगे।"

केशव बाबू चिहुंक उठे, "व्यापार? क्या कह रही हो?" और उन्होंने कालीकान्त की ओर ताका।

कालीकान्त बोला, "हां बाबूजी, आपकी लड़की ठीक ही कह रही है। आजकल नौकरी में कोई रस नहीं रहा। पहले के साहब भी चले गए और उनके जाने के बाद नौकरी की इज्जत भी विदा हो गई।"

"तुम किस चीज का कारोबार करना चाहते हो?"

काशीकान्त ने उत्तर दिया, "मछली का। मछली का कारोबार करूंगा।"

"कह रहे हो कि मछली का कारोबार करूंगा, मगर इसके पहले कभी किया है?"

काशीकान्त ने कहा, "मैंने नहीं किया है, लेकिन मेरा एक मित्र मछली का कारोबार करके मालामाल हो गया है। वह राजस्थान से मछली खरीदकर लाता है और उसे कलकत्ते के बाजार में बेचकर हर रुपये में दो रुपया फायदे के तौर पर कमाता है। तब हां, शुरू में पूंजी के रूप में मोटी रकम लगानी पड़ती है। मेरे सामने इसी पूंजी की कमी है।"

केशव बाबू ने पूछा, "शुरू में कितनी पूंजी लगानी है?"

"पांच हजार रुपया होने से ही काम चल जाएगा?"

"पांच हजार में ही हो जाएगा?"

"शुरू में पांच हज़ार लगाऊंगा, उसके बाद और रुपयों की ज़रूरत पड़ी तो आपसे मांग लूंगा।"

इसके बाद में काफी बहस-मुबाहसा चला। काशीकान्त दो-तीन दिनों तक ससुराल में ही रहा। केशव बाबू ने बहुत समझाया-बुझाया। आज के दिनों में एक बार नौकरी चली जाए तो फिर मिलना मुश्किल है। और काशीकान्त नौकरी छोड़ना चाहता है!

अन्त में सोचा, उन्हें कोई लड़का तो है नहीं। जो है, लड़की ही है। चाहे लड़का कहो, चाहे लड़की, एक निर्मला ही है। उनके मरने के बाद निर्मला ही इस मकान की मालकिन होगी। तब सारी जायदाद की उत्तराधिकारिणी वही होगी।

आखिरकार उन्होंने कहा, "ठीक है, तुम्हें पांच हज़ार रुपये दूंगा। तुम अगर सोचते हो कि मछली का कारोबार कर तुम पैसे वाले हो जाओगे तो वही करो, बेटा! मुझे अब कितने दिनों तक जीना है! मैं अब ज़्यादा दिनों तक ज़िन्दा नहीं रहूंगा। तुम्हें तरक्की करते देखूंगा तो मैं सुखी हूंगा।"

काशीकान्त विचारवान व्यक्ति है। बोला, "शुरू में आप पर ज़्यादा भार नहीं डालूंगा। यों शुरू में मुझे ज़्यादा पैसे की ज़रूरत है भी नहीं। पहले आप दो हज़ार रुपये ही दें, मैं इसी से शुरुआत करने की कोशिश करूंगा। उसके बाद जब देखूंगा कि अच्छा फायदा हो रहा है तो ज़रूरत पड़ने पर आपसे मांग लूंगा।"

केशव बाबू ने सोचकर देखा, प्रस्ताव बुरा नहीं है। बोले, "ठीक है, मैं तुम्हें दो हजार रुपये देता हूं, तुम जो उचित समझो, करो।"

१९

काशीकान्त ने अत्यन्त उल्लास के साथ नौकरी छोड़ दी, रुपयों को जेब के हवाले किया और राजस्थान रवाना हो गया। सरकारी क्वार्टर खाली कर निर्मला को केशव बाबू के पास रख गया। राजस्थान से वह कलकत्ते के बाजार में मछली भेजेगा। तीन-चार रुपये किलो की दर से मछली खरीदकर कलकत्ते के बाजार में बीस रुपये किलो की दर से बेचेगा। बेहद लाभ होगा। दो-चार साल में ही लखपती हो जाऊंगा। तब जितनी इच्छा हो, गहना-साड़ी खरीदो, तब तुम्हें मना नहीं करूंगा, रोकूंगा नहीं।

निर्मला इसी भरोसे पर बाप के पास आकर रहने लगी। इससे बाप-बेटी दोनों को सुविधा हुई। बल्कि देखरेख करने के लिए बाप को एक आदमी मिल गया। तब से निर्मला ही घर की मालकिन बन बैठी।

हाय रे मनुष्य और हाय री उसकी नियति !

जिन बुरे क्षणों में केशव बाबू की पत्नी ने यह मकान बनवाया था, पता नहीं। अपने शौक-शान को तिलांजलि देकर, सभी को सुख-सुविधा के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर, माथे पर धूप-बारिश-आंधी झेलकर उसने यह मकान बनवाया था। लेकिन अन्ततः उसकी परिणति क्या हुई ? अगर उन्हें पहले से ही इस बात का पता रहता तो···

स्वयं केशव बाबू को भी पता नहीं था कि जीवन-भर साहब की खुशामद कर नौकरी करने के बाद उनकी यह हालत होगी !

२०

उसी समय एक काण्ड घटित हुआ। अचानक थाने से एक आवश्यक पत्र

आया। उनके पते पर वासव मुखोपाध्याय के नाम से जो टैक्सी है, उस टैक्सी से एक दुर्घटना घटी है। तीन व्यक्तियों को कुचलकर टैक्सी लापता हो गई है। टैक्सी के मालिक को अमुक तिथि के बीच पुलिस-कोर्ट में हाज़िर होना है वरना उचित कार्रवाई की जाएगी।

पत्र मिलते ही केशव बाबू के माथे पर जैसे वज्रपात हुआ हो। जिसके नाम से पत्र है, वह कहां है। मालूम नहीं। लेकिन पत्र उन्हीं के पते पर भेजा गया है।

केशव बाबू तत्क्षण थाने में जाकर हाज़िर हुए। पत्र दिखाते हुए कहा, "देखिए, यह पत्र जिसके नाम से है, मैं उसका बड़ा भाई हूं। उसका कहीं पता नहीं है ऐसी हालत में मैं अभी क्या करूं?"

मामला एक ही दिन में खत्म नहीं हुआ। आदमी शेर के फेर में पड़ जाए तो अठारह घाव और पुलिस के फेर में पड़ जाए तो छत्तीस घाव।

और रुपया? रुपयों का श्राद्ध होने लगा। वकील और कचहरी के चपरासी से लेकर पेशकार, क्लर्क तक की पूजा करनी पड़ी।

केशव बाबू को छह महीने तक कोर्ट-कचहरी और थाने में दौड़-धूप करनी पड़ी। देह थककर चूर-चूर हो गई।

केशवबाबू जब कचहरी से घर आते, निर्मला बाप को खरी-खोटी सुनाती, "ठीक हुआ है, चाचाजी को और रुपया दीजिए, और देखिए, आपको उचित सबक मिला है…"

केशव बाबू कहते, "बताओ, मैं क्या करूं! सगा भाई है, विपत्ति में अगर मैं सहायता न करूं तो कौन करेगा? सिवा मेरे उसका है ही कौन?"

निर्मला कहती, "मैं होती तो ऐसे भाई का गला घोंट देती।"

केशव बाबू कहते, "ऐसा मत कहो। मरने के समय पिताजी तुम्हारे चाचा को मेरे हाथों में सौंप गए थे। कहा था, 'केशव, इसे तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रहा हूं, इस पर नज़र रखना…'

जिस तरह आदमी के जीवन में सुख हमेशा नहीं रहता, दुःख के साथ भी यह बात लागू होती है। दुःख की भी एक सीमा होती है। पुलिस को मोटी रकम देने के बाद मामला दब गया, लेकिन इसी वजह से लड़की से झगड़े की शुरुआत हो गई।

निर्मला ने कहा, "अगर चाचाजी को कभी इस घर में कदम रखने दिया तो फिर मैं देख लूंगी। आप जीवन-भर भाई के लिए झख मारते रहिएगा, इसके बाद अगर चाचा घर आए तो मैं गले मे फन्दा लगा लूंगी। मैं आपसे यह कहे देती हूं..."

केशव बाबू ने सोचा, गुस्से मे आदमी ऐसी बातें बोलता ही है। लेकिन सचमुच निर्मला ऐसा काण्ड कर बैठेगी, इसका पता किसे था?

एक दिन वासु एकाएक फिर से आ धमका।

केशव बाबू ने अचकचाकर कहा, "तुम इतने दिनों तक कहां थे?"

वासु ने उत्तर नहीं दिया। अपराधी की तरह सामने चुपचाप खडा रहा।

केशव बाबू ने दुबारा सवाल किया, "तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है! कुछ खाया नहीं है? तुम्हारी टैक्सी कहा है? तुम इतने दिनों तक कहा थे? तुम्हारे कारण मैं कचहरी की धूल छानता रहा, ढेर-सारा पैसा भर आया और तुम्हारा कोई पता ही नहीं।"

वासु ने इस बात का भी कोई उत्तर न दिया।

केशव बाबू ने तारक को पुकार कर कहा, "अरे छोटे बाबू लौट आए हैं। उनके लिए चावल पकाओ, बाजार जाकर अच्छी मच्छी ले आओ।"

यह कहकर बाजार के लिए पैसा दिया।

निर्मला बुडबुडाने लगी। हालांकि उसने गले मे फन्दा लगाने की बात कही थी, पर ऐसा किया नहीं।

उसके बाद एक ही मकान मे भतीजी और चाचा दिन-दिन जैसा-जैसा काण्ड करने लगे, जिस भाषा में एक-दूसरे को गाली-गलौज करने लगे कि बीच-बीच मे केशव बाबू को अंगुलियों से कान बन्द कर लेना पड़ता था। और जब बात बरदाश्त के बाहर हो जाती, सामने के पार्क में एकांत बेंच पर जाकर बैठ जाते थे।

केशव बाबू के मन की जिन दिनों यह हालत थी, उन्हीं दिनों हम दोनों मे जान-पहचान हुई।

इसी परिचय के संदर्भ में उनके जीवन की त्रासदी का मुझे पता चला। पैसे के अभाव का दु:ख समझा जा सकता है परन्तु पैसा या जायदाद रहने पर

था। उनके पते पर वासव मुखोपाध्याय के नाम से जो टैक्सी है, उस टैक्सी से एक दुर्घटना घटी है। तीन व्यक्तियों को कुचलकर टैक्सी लापता हो गई है। टैक्सी के मालिक को अमुक तिथि के बीच पुलिस-कोर्ट में हाज़िर होना है वरना उचित कार्रवाई की जाएगी।

पत्र मिलते ही केशव बाबू के माथे पर जैसे वज्रपात हुआ हो। जिसके नाम यह पत्र है, वह कहां है। मालूम नहीं। लेकिन पत्र उन्हीं के पते पर भेजा गया है।

केशव बाबू तत्क्षण थाने में जाकर हाज़िर हुए। पत्र दिखाते हुए कहा, "देखिए, यह पत्र जिसके नाम से है, मैं उसका बड़ा भाई हूं। उसका कहीं पता नहीं है ऐसी हालत में मैं अभी क्या करूं?"

मामला एक ही दिन में खत्म नहीं हुआ। आदमी शेर के फेर में पड़ जाए तो अठारह घाव और पुलिस के फेर में पड़ जाए तो छत्तीस घाव।

और रुपया? रुपयों का श्राद्ध होने लगा। वकील और कचहरी के चपरासी से लेकर पेशकार, क्लर्क तक की पूजा करनी पड़ी।

केशव बाबू को छह महीने तक कोर्ट-कचहरी और थाने में दौड़-धूप करनी पड़ी। देह थककर चूर-चूर हो गई।

केशवबाबू जब कचहरी से घर आते, निर्मला बाप को खरी-खोटी सुनाती, "ठीक हुआ है, चाचाजी को और रुपया दीजिए, और देखिए, आपको उचित सबक मिला है..."

केशव बाबू कहते, "बताओ, मैं क्या करूं! सगा भाई है, विपत्ति में अगर मैं सहायता न करूं तो कौन करेगा? सिवा मेरे उसका है ही कौन?"

निर्मला कहती, "मैं होती तो ऐसे भाई का गला घोंट देती।"

केशव बाबू कहते, "ऐसा मत कहो। मरने के समय पिताजी तुम्हारे चाचा को मेरे हाथों में सौंप गए थे। कहा था, 'केशव, इसे तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रहा हूं, इस पर नज़र रखना...'

जिस तरह आदमी के जीवन में सुख हमेशा नहीं रहता, दुःख के साथ भी यह बात लागू होती है। दुःख की भी एक सीमा होती है। पुलिस को मोटी रकम देने के बाद मामला दब गया, लेकिन इसी वजह से लड़की से झगड़े की शुरुआत हो गई।

केशव बाबू ने कहा, "वह मेरे मकान पर नज़र गड़ाए है! क्या कह रही हो तुम?"

"आपसे जो कह रही हूं, सच ही कह रही हूं। आप पार्क में जाकर बैठे रहते हैं। आपको कुछ पता ही नहीं रहता। चाचाजी मुझसे क्या कहते हैं। आपको पता है?"

"क्या कहता है?"

"कहते हैं कि मुझे आपका मकान मिलेगा। इसीलिए मैं उनसे झगड़ती रहती हूं, मैं उन्हें बरदाश्त नहीं कर पाती हूं। चाचाजी की यह हिम्मत कि मुझे यह सब कहें?"

केशव बाबू ने कहा, "तुम इन बातों का जवाब ही क्यों देती हो? चुपचाप रह सकती हो। मकान तो मेरा है, जब तक मैं जिन्दा हूं, इस बात का जिक्र ही क्यों छिड़ता है? इस मकान का मालिक मैं हूं या वह? जिसकी भी मर्जी होगी, मैं उसे ही यह मकान दे जाऊंगा। इसमें तुम्हें या बामु को मतलब?"

निर्मला चिल्ला उठी, "यह बात आप चाचा से नहीं कह सकते हैं? मुझसे कहने से फायदा? चाचा से कहने की आपमें हिम्मत नहीं है?"

केशव बाबू ने कहा, "वह कहां है? उसको तो देख ही नहीं रहा हूं। उससे मुलाकात हो, तब न कहूं।"

"मुलाकात होगी कैसे? आप घर पर रहें तब न मुलाकात हो। आप जब नहीं रहते हैं तो चाचाजी आते हैं, आकर मुझ पर रौब गालिब करते हैं। चाचा जी चाहते हैं कि मैं इस मकान को छोड़कर चली जाऊं।"

"अच्छा तो फिर आज मैं पार्क नहीं जाऊंगा," केशव बाबू ने कहा, "दिन भर घर पर ही रहूंगा। जब तक वह नहीं आ जाता है, मैं बैठा रहूंगा।"

उस दिन केशव बाबू घर से बाहर नहीं निकले। दोपहर बीत गई, तीसरा पहर बीत गया, शाम उतर आई, फिर रात के बारह बज गए, लेकिन बामु नहीं आया।

तारक ने आकर पूछा, "मालिक, खाना परोस दूं?"

केशव बाबू चिल्ला उठे, "नहीं, तू मेरे सामने से चला जा!"

निर्मला ने आकर कहा, "आप हम पर क्यों झुंझला रहे हैं बाबूजी? जब

मर्जी होगी, चाचाजी आएंगे। आप उनके लिए विना खाए-पीए क्यों रहिएगा ? आपकी भी तवीयत ठीक नहीं, कहीं आप भी चल वसे तो फिर क्या होगा ?"

केशव वावू ने कहा, "मेरी तवीयत खराव होगी, होने दो। इससे किसी का क्या आता-जाता है ? मैं नहीं खाऊंगा। देखना है कि वह घर कव लौटता है !"

निर्मला ने कहा, "और चाचाजी अगर कभी आएं ही नहीं तो ? तो आप हमेशा-हमेशा के लिए विना खाए-पिए रहिएगा ?"

"हां-हां, रहूंगा। मैं विना खाए-पिए ही मरूंगा। तुम्हारी मां ही मेरा यह सर्वनाश कर गई है। अगर तुम्हारी मां यह मकान न वनवाती तो मेरी यह दुर्दशा क्यों होती ? मैं अपने ही मकान में एक क्षण के लिए शांतिपूर्वक वास नहीं कर पाता हूं। पूर्वजन्म में मैंने क्या इतना पाप किया था ? तुम्हारी मां मकान क्यों वनवा गई ? ज़िन्दगी-भर आफिस में खटता रहा, अव बुढ़ापे में एक पल के लिए घर में वैठकर आराम करूं, तुम लोग मुझे यह आराम भी नहीं करने दोगे ? इस मकान की वजह से ही मुझे इतनी अशांति का सामना करना पड़ता है। इस संपत्ति पर ही आकर तुम लोगों को इतना लोभ है तो यह मकान तुम्हीं लोग ले लो, मैं राह-वाट में रहकर जी लूंगा..."

निर्मला ने कहा, "आप क्या कह रहे हैं ? मुझे आपके मकान पर लोभ है ?"

केशव वावू ने कहा, "लोभ नहीं तो और क्या ? इसी मकान के कारण वासु को घर छोड़ना पड़ा, इसी मकान के करण ही मेरा दामाद लापता हो गया और इसी मकान के चलते तुम मेरी इतनी दुर्गति कर रही हो। मेरे लिए यह मकान ही पाप हो गया है..."

"अगर आपके मन में यही है तो कहिए, मैं अभी तुरन्त इस घर से चली जाती हूं। मुझे इस मकान की जरूरत नहीं है। अपने गुणी भाई के नाम आप अपना यह मकान वसीयत कर दीजिए। आप अपना मकान चाहे जिसको दे दें, मुझे कौन-सी आपत्ति हो सकती है ? आपकी लड़की होने के वावजूद अगर मुझे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ें और इससे आपके गौरव में वृद्धि हो तो वहुत ही खुशी की वात है। मैं ही घर छोड़कर चली जाती हूं।"

यह कहकर निर्मला वहां रुकी नहीं। वात समाप्त कर वह आधी रात के वक्त ही निकलकर जाने लगी।

केशव बाबू भयभीत हो गए। जोरों से पुकारा, "अरी निर्मला, कहां जा रही हो ? सुनो, सुनो···"

लेकिन तब उनकी बात कौन सुने ? निर्मला उस समय बिना किसी सरो-सामान के ही जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतर रही थी।

केशव बाबू के कानों में निर्मला के पांवों की आहट पहुंची। वे भयभीत हो गए। क्या सचमुच निर्मला इतनी रात में घर से निकलकर चली जाएगी ?

वे चिल्ला-चिल्लाकर आवाजें लगाने लगे, "अरे तारक, तारक, दीदीजी को पकड़ो, दीदीजी घर से निकलकर चली जा रही हैं···"

तारक तेजी से नीचे उतरा। लेकिन केशव बाबू निश्चिन्त होकर बैठ नहीं सके। वे भी अस्वस्थ हालत में ही नीचे उतरने लगे। साथ ही साथ चिल्लाने लगे "अरी ओ निर्मला, मत जाओ, लौट आओ, बुढ़ापे में मैं किसके सहारे जिन्दा रहूंगा ? इतनी रात में बाहर मत जाओ···"

असावधानी के कारण उनका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर पड़े। *गिरते ही बेहोश हो गए।*

मुझे ये सब बातें मालूम नहीं थी।

कई दिनों से उन्हें पार्क में देख नहीं रहा था। मैंने सोचा, वे पारिवारिक झंझटों में फंसे होंगे। मैं भी बहुत-सी झंझटों में उलझा हुआ था।

केशव बाबू मुझे हमेशा याद आते रहते थे। दूर से मैं उस मकान की शक्ल की ओर ताकता और सोचता था कि उसमें जो इतनी अशांति है, इतनी-इतनी झंझटों और परेशानियों का वास है, बाहर रहकर कोई क्या इसकी कल्पना कर सकता है ? मकान देखने में कितना खूबसूरत है। खिड़की के अन्दर नीले प्रकाश का वृत फैला दीखता है। दनादन पंखा चल रहा है। बाहर ग्रीन रेलिंग है। हर खिड़की पर नीले परदे टंगे हैं। देखते ही ईर्ष्या का बोध होता है।

तारक अगर मुझे अन्दरुनी बातें नहीं बताता तो दूसरे-दूसरे व्यक्तियों की तरह मुझे भी उस मकान के मालिक केशव बाबू से रश्क ही होता। मैं भी कामना करता—काश, मुझे भी ऐसा ही एक मकान होता।

किन्तु लोग-बाग इसके लिए दोषी नहीं हैं। आम लोग आमतौर से किसी वस्तु की बाहरी चमक-दमक को ही देखकर उसकी असली कीमत आंकते हैं। किसी की साज-पोशाक देखकर ही आदमी उसकी इज्जत या सम्मान करता है

उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। लेकिन उस साज-पोशाक की ओट में खड़े व्यक्ति को कौन पहचानता है? उस व्यक्ति को कौन समझ पाता है?

मैं अब केशव बाबू के घर पर जो नहीं जाता था, उसका एक कारण था। सोचता था, क्यों उनकी परेशानियों के बीच पहुंचकर उन्हें शर्मिन्दा करूं! उनकी गृहस्थी के अन्दर महल की बातों को अगर किसी को जानकारी हो जाती है तो उनकी लज्जा की मात्रा बढ़ेगी ही; कम होना मुश्किल है, मैं उनके जीवन में किसी प्रकार की शान्ति नहीं ला पाऊंगा। मैं उनका कोई भी उपकार नहीं कर सकूंगा।

२१

एक दिन एकाएक तारक मेरे घर पर आया। मैं तारक को देखकर अवाक् हो गया।

"क्यों तारक, क्या खबर है?" मैंने पूछा।

तारक ने कहा, "मालिक, बड़े बाबू ने एक बार आपको बुलाया है। वे बहुत बीमार हैं।"

मैं आश्चर्य में आ गया।

"बीमार हैं? कौन-सी बीमारी है?" मैंने पूछा।

तारक बोला, "वे सीढ़ी से गिर पड़े थे। खून से लथपथ हो गए थे। यह वाकया हुए तीन-चार महीने हो गए। अब तक वे अस्पताल में थे। अब घर लौट आए हैं लेकिन लगता है अब जिन्दा नहीं रहेंगे। यही वजह है कि आखिरी घड़ी में आपसे एक बार मिल लेना चाहते हैं।"

"अब तक तुमने मुझे सूचित क्यों नहीं किया था?"

"सूचना देने का वक्त ही कहां मिलता था, मालिक? अब तक यम और आदमी के बीच खींचतान चल रही थी। कभी मैं अस्पताल जाता था तो कभी घर जाता था।"

"एकाएक सीढ़ी से कैसे गिर पड़े?" मैंने पूछा।

तारक ने कहा, "उसके पीछे बहुत-सी बातें हैं, मालिक।"

और उसने उस घटना के बारे में विस्तार से बताया, "दीदीजी बारह बजे रात में मालिक से झगड़कर बाहर निकल रही थीं। मालिक उन्हें मना करने के ख्याल से सीढ़ियाँ उतरने लगे। उतरते ही पैर फिसलकर गिर पड़े और उनका सिर फूट गया। उसी रात उन्हें अस्पताल ले जाया गया।"

मैंने पूछा, "अब तुम्हारे मालिक कुछ अच्छे हैं न ?"

"नहीं," तारक ने कहा, "अच्छे रहें तो कैसे ? अब जमाई बाबू इतने दिनों के बाद अचानक लौटकर चले आए हैं। ज्यों ही सुना कि मालिक बीमार हैं कि तुरन्त आ धमके।"

"और उनका मछली का कारोबार ?"

तारक ने कहा, "मछली का कारोबार चौपट हो चुका है। व्यर्थ ही मालिक के कई हजार रुपये बरबाद हुए। अब यहाँ आराम के साथ खाते-पीते हैं और मुझ पर रौब गालिब करते हैं। मैं परेशानियों के दौर से गुजर रहा हूँ, मालिक। इधर मालिक की सेवा और उधर जमाई बाबू की खिदमत। वह इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि मालिक की मौत हो जाने पर जायदाद दीदीजी को ही मिलेगी।"

केशव बाबू की दुरवस्था की बातें सुनकर मैं बड़ा ही दु:खी हुआ। जीवन-भर बिना खाए-पिए रहकर, तकलीफ उठाकर उन्होंने व्यर्थ ही यह मकान बनवाया। वरना लड़की, दामाद और छोटे भाई के हाथों उनकी यह दुर्गति नहीं होती।

२२

सब सुनने के बाद मैं जाने के लिए प्रस्तुत हुआ।

"चलो।" मैंने कहा।

यह कहकर मैं सड़क पर निकल आया और केशव बाबू के घर की ओर चल दिया।

केशव बाबू के घर के निकट जब पहुँचा तो मैं विस्मय से अभिभूत हो गया। देखा, एक विशाल गाड़ी मकान के सामने खड़ी है। जिस तरह की विशाल गाड़ियाँ सड़कों पर चलती दीखती हैं वह उस तरह की गाड़ी नहीं थी।

गाड़ी कितने लाख रुपये की हो सकती है, इसकी कल्पना करना मेरे जैसे मध्य-वर्ग के लिए संभव नहीं है। गाड़ी की चारों खिड़कियों पर कीमती परदे टंगे हैं। वर्दी में लैस ड्राइवर स्टीयरिंग पर बैठा है। पास ही दरवानुमा एक और आदमी ज़रीदार पगड़ी पहने खड़ा है।

मैंने तारक से पूछा, "तुम्हारे घर पर कौन आए हैं, तारक ?"

यह बात तारक की भी समझ में न आ रही थी कि किसकी गाड़ी मकान के सामने खड़ी है। उसने हैरत में आकर कहा, "मेरी भी समझ में कोई बात नहीं आ रही है।"

सचमुच, ऐसा तो होता नहीं है।

तारक घर से जब निकला था तो यह गाड़ी वहां नहीं थी। इसके अलावा कभी इस तरह की गाड़ी इस मकान के सामने आकर खड़ी नहीं हुई है।

तारक ने गाड़ी के सामने जाकर पूछा, "ड्राइवर साहब, यह किनकी गाड़ी है ? हम लोगों के मकान में कौन आए हैं ?"

ड्राइवर ने अवहेलना और गर्व से मिले-जुले स्वर में कहा, "नाहरगढ़ के राजा साहब की" ......यानी नाहरगढ़ के राजा साहब की गाड़ी है।

"नाहरगढ़ ? नाहरगढ़ कहां है ?"

न तो तारक को और न मुझे ही मालूम था कि नाहरगढ़ कहां है। मयूर-भंज का नाम सुना है, वर्धमान का नाम सुना है। कितनी ही स्टेटों का नाम सुना है। नाहरगढ़ स्टेट का नाम कभी सुना ही नहीं। और अगर नाहरगढ़ नामक कोई स्टेट है भी तो वहां के राजा साहब आज केशव बाबू के पास क्यों आए हैं !

तारक और मैं घर के अन्दर घुसने जा रहे थे। अचानक एक कोट-पैंट-टाई पहने साहबनुमा बंगाली सज्जन मुंह में चुरुट दबाए अन्दर से बाहर निकले। उनके निकलते ही दरवान और ड्राइवर दोनों ने उन्हें सैल्यूट किया और अटेंशन की मुद्रा में खड़े हो गए। उस ओर बिना कोई ध्यान दिए राजा साहब ज्योंही गाड़ी की ओर बढ़े, दरवान अदब के साथ दरवारा खोलकर खड़ा हो गया। उसके बाद राजा साहब गाड़ी पर ज्यों ही चढ़कर बैठ गए, दरवान ने फिर से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

उसके बाद वह गाड़ी की सामने की सीट पर ड्राइवर की बगल में जाकर बैठ गया।

ड्राइवर ने तत्क्षण गाड़ी स्टार्ट कर दी।

पैट्रोल और चुरुट की तीखी गंध हमारे नथनों में आकर समा गई। हम लोग खोए-खोए उस ओर ताकते रहे। हमारे विस्मय का दौर कुछ देर के बाद खत्म हुआ। जब दौर खत्म हुआ, तारक ने कहा, "यह तो हमारे छोटे बाबू हैं।"

मैंने पूछा, "छोटे बाबू? छोटे बाबू यानी? केशव बाबू के भाई! बासु? वह नाहरगढ़ का राजा साहब कब से हो गया? किस तरह हुआ?"

तारक बोला, "मैं तब से यही बात सोच रहा हूं, मानिक जी। ये हमारे छोटे बाबू के अलावा कोई हो ही नहीं सकते।"

उसके बाद कहा, "चलिए, ऊपर चलें।"

और वह दोमंज़िले पर पहुंचने के लिए सीढ़ियां तय करने लगा। मैं भी उसके पीछे-पीछे जाने लगा।

दोमंज़िले पर जाते ही देखा, एक भला आदमी गंजी और लुंगी पहने आराम से सिगरेट का कश खींच रहा है। तारक पर नज़र पड़ते ही उसने कहा, "ए तारक के बच्चे, अब तक तू कहां था? पट्ठे, तुझे कब से ढूंढ़ रहा हूं। मेरी चाय कहां है?"

तारक ने कहा, "अभी ले आया जमाई बाबू।"

"ले आया जमाई बाबू" तारक की बातों को दुहराकर भले आदमी ने अपना मुंह बिचकाया।

"तुझे यह पता ही है कि बाथरूम जाने के पहले मेरे लिए चाय ज़रूरी हो जाती है। काम में तेरा मन ही नहीं लगता है। बैठे-बैठे तनखा ले रहा है? ठहर, तेरी तनखा रोकवा देता हूं।"

समझ गया कि आप ही हैं केशव बाबू के दामाद—काशीकांत। वही काशीकांत, जिसने कहा था कि मैं मछली का कारोबार करूंगा और ससुर से हज़ारों रुपए लेकर फूंक डाला था। अब ससुर की बीमारी की बात सुनकर संपत्ति हड़पने के ख्याल से चील की तरह आकर जमकर बैठ गया है। तारक जल्दी-जल्दी मुझे केशव बाबू के कमरे में ले गया।

देखा, केशव बाबू के माथे पर पट्टी बंधी है और वे एक खाट पर लेटे हैं। मुझे देखते ही उन्होंने अपनी करुण आंखें फैला दीं।

मैं उनके पास जाकर कुर्सी पर बैठ गया।

केशव बाबू ने कहा, "आपको तारक की मारफत बुला भेजा है। आपने तारक से सब सुन लिया होगा ?"

"हां, सुन लिया है।" मैंने कहा।

केशव बाबू ने कहा, "इतने दिनों तक लापता रहने के बाद मेरा दामाद भी लौट आया है, यह भी सुना होगा ?"

"हां, यह भी सुन चुका हूं।"

केशव बाबू कहने लगे, "मेरी बीमारी की खबर सुनकर आया है। सोचा है, अब मैं मरने जा रहा हूं। मरने पर संपत्ति कहीं हाथ से निकल न जाए। कहीं यह मकान कोई हथिया न ले। इन्हीं कारणों से आया है। बीमारी में वह मेरी सेवा करने नहीं आया है, आया है तो जायदाद के लोभ में। कहीं मेरा भाई बासु यह मकान दखल न कर ले। समझ रहे हैं न ?"

मैं क्या उत्तर देता ?

मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "आप ज्यादा बातचीत न करें, चुपचाप पड़े रहा कीजिए। आप इतनी बड़ी बीमारी के दौर से गुज़र चुके हैं। भाग्य की बात यह है कि आपकी जान बच गई।"

अबकी केशव बाबू की आवाज़ तेज़ हो गई। "आप क्या कह रहे हैं ! मेरी जान बच गई है ? अब मैं जिन्दा नहीं रहना चाहता, यह दुनिया जिन्दा रहने के लायक नहीं है। मैं पहले ही क्यों न मर गया—यही सोचता हूं।"

मैंने कहा, "आप उत्तेजित न हों, केशव बाबू। तारक ने बताया था कि डाक्टर ने अब भी आपको लेटे रहने को कहा है।"

केशव बाबू ने कहा, "इसीलिए आपको बुलवाया है, विमल बाबू। आपसे बगैर कहे चैन नहीं मिल रहा है। अच्छा, आप यह बता सकते हैं कि आदमी किसलिए संपत्ति उपार्जित करता है ? मेरी गृहिणी कितना कष्ट झेलकर यह मकान बनवा गई थी, यह तो आपको बता ही चुका हूं। मगर जब वह चल बसी, तो यह संपत्ति उसके साथ गई ? और दो दिन बाद मैं भी विदा हो जाऊंगा। आप ही बताइए, मेरे साथ ही क्या यह सब जाएगा ?"

यह कहकर उन्होंने एक सांस ली। उसके बाद फिर से कहना शुरू किया, "जानते हैं, मेरी सगी लड़की है, कितने लाड़-प्यार से मैंने उसे पाला था। अब

वह मेरे कमरे में झांकने तक नहीं आती है। एक बार आकर यह नहीं पूछती कि बाबूजी, आप कैसे हैं।"

'छोड़िए, अभी इन बातों को जाने दीजिए।" मैंने कहा।

"क्यों जाने दूं, विमल बाबू," केशव बाबू ने अपना कथन जारी रखा, "अभी मैं सब बातें न कहूं तो फिर कब कहूंगा? मेरा है ही कौन? कहीं मेरी यह संपत्ति मेरा भाई दखल न कर ले, इसी ख्याल से वह जमकर बैठी है। मन-ही-मन सोचती है कि कब मेरी मृत्यु होगी। लड़की होकर बाप की मौत की कामना कर रही है। आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं!"

कुछ देर रुककर फिर कहने लगे, "और मेरे दामाद का हाल देखिए। सरकारी दफ्तर में स्थायी नौकरी में था। लड़का चरित्रवान है और सरकारी नौकरी कर रहा है—यही देखकर मैंने उसे अपना दामाद बनाया था। मगर ज्यों ही उसे गंध लग गई कि ससुर को प्रोविडेण्ट फंड के रूप में ढेर सारे रुपये मिले हैं, और उन्होंने अपने भाई को कारोबार करने के लिए रुपया दिया है, तत्काल उसने मुझसे कहा, 'मैं भी कारोबार करूंगा।' सो मैंने उसे भी रुपये दिए। रुपये लेकर अगर वह सचमुच कारोबार करता तो कोई बात नहीं थी। मगर उन रुपयों को लेकर वह लापता हो गया और मेरे पैसे फूंक डाले..."

मैं खामोश होकर केशव बाबू की कहानी सुन रहा था। इसके अलावा मेरे लिए उस समय करने को था ही क्या?

उसके बाद उसी तरह हांफते-हांफते कहने लगे, "और देखिए, अचानक इतने बरसों के बाद वही दामाद मेरे घर में आकर बैठ गया है, मगर काम करने का नाम तक नहीं लेता। यहां बैठे-बैठे सिर्फ ससुर की रोटी तोड़ रहा है और हर पल सिगरेट का कश ले रहा है।"

'हां, अभी देखा, तारक से चाय मांग रहा था।" मैंने कहा।

"बस चाय—दिन भर चाय और सिगरेट चाहिए। अकेला बेचारा तारक मेरी सेवा करे या दामाद के लिए चाय बनाए?"

मैंने कहा, "जब मैं आपके मकान के अन्दर घुसने जा रहा था, सामने एक विशाल अमरीकी गाड़ी दीख पड़ी। नाहरगढ़ या कहीं के राजा साहब आये हुए थे। वे क्या आपके वही छोटे भाई हैं जिनके बारे में आपने बताया था? वह क्या बानू ही था?"

अवकी केशव वावू ने अपने हाथों से मेरा एक हाथ कसकर पकड़ लिया। उनकी आंखें छलछला आईं।

वे वोले, "आपने देखा? वासु को आपने देखा? देखा न, उसका चेहरा कैसा हो गया है। देखो न, कैसा कुरता-पैंट पहना है? देखा कि किस तरह चुरुट का कश ले रहा है? आपने देखा है? सचमुच आपने देखा है? गाड़ी आपको कैसी लगी?"

मैंने कहा, "देखा—सव-कुछ देख लिया है। देखकर लगा कि वहुत वड़े आदमी हैं। वहुत वड़ा आदमी न हो तो इस तरह के कोट-पैंट-टाई नहीं पहन सकता है। चाहे दरवान कहिए, चाहे ड्राइवर—हर व्यक्ति कितनी भड़कीली पोशाक में था। और गाड़ी देखने पर लगा कि आजकल के वाज़ार में उसकी कीमत चार-पांच लाख रुपये से कम न होगी। पूरी गाड़ी ही एयर-कंडिशण्ड थी। वह अगर आपका भाई वासु है तो उसे अचानक इतने रुपये कहां से मिल गए?"

केशव वावू ने उत्तर दिया, "मैंने उससे भी यह वात पूछी कि तुम्हारे पास इतने पैसे कहां से आये? पता है, उसने क्या कहा? कहा कि उसने किसी नाहरगढ़ स्टेट की रानी से शादी की है..."

"नाहरगढ़? यह स्टेट कहां है?"

केशव वावू वोले, "मुझे भी इसका पता नहीं था, साहव। त्रिपुरा या आसाम या मणिपुर का कोई नेटिव स्टेट है। वहां की विधवा रानी से उसे मुहब्बत हो गई। उस आवारे वंडे को रानी ने क्या देख-सुनकर पसन्द किया है, पता नहीं। औरतों को अपने हाथ में करने की कला में संभवतः वह वहुत ही दक्ष है। हमेशा से यही सव करता आया है। रानी उससे उम्र में वड़ी थी। अव रानी मन चुकी है। विधवा रानी के कोई सन्तान न थी। रानी की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति का अव वही मालिक हो गया है। देखिए, ज़िन्दगी-भर ईमानदार रहकर, मेहनत-मशक्कत कर मैं कुछ नहीं कर सका! शराव पीकर, नशेवाज़ी कर, अड्डेवाज़ी कर, आवारागर्दी कर उसने मुझसे लाखों गुना अधिक मान-सम्मान, प्रतिष्ठा हासिल कर ली!"

वात सुनकर मैं हतप्रभ हो गया।

"वहुत ही आश्चर्य की वात है!" मैंने कहा।

केशव बाबू ने कहा, "आपको आश्चर्य हो रहा है। मगर जब से यह बात मुझे मालूम हुई है, मेरा माथा चकरा रहा है, छाती धड़क रही है। लगता है, अभी तुरन्त मेरा हार्ट फेल कर जाएगा। फिर मेरा लिख-पढ़कर ईमानदारी की जिन्दगी जीना कौन-सा मानी रखता है? विद्यासागर, परमहंस देव, चैतन्य देव, बुद्धदेव, शंकराचार्य और ईसामसीह जो कुछ कह गए हैं, वह सब क्या असत्य ही है। आज के युग में क्या असत्य का ही जयजयकार किया जाता है? सचाई, सत्यवादिता, निष्ठा, ब्रह्मचर्य—इन सब की कोई कीमत नहीं? फिर ईश्वर भी असत्य ही है? इतने दिनों तक जिन महापुरुषों ने इस धरती पर जन्म लिया है, वे सब क्या धोखेबाज ही थे?"

बात करते-करते केशव बाबू उत्तेजित हो उठे। वे हांफने लगे। अचानक वे उठकर बैठने लगे। मैंने उन्हें पकड़कर लिटा देना चाहा, किन्तु उन्होंने किसी भी हालत में मेरी बात नहीं मानी। तब वे बैठे-बैठे चिल्लाने लगे—

"मैं आपसे कह दूं, बिमल बाबू, कि यह अन्याय है, अविचार है, यह बरदाश्त करने लायक नहीं है। जिन्दा रहकर मैं यह अन्याय बरदाश्त नहीं कर सकता। मानव-समाज भी इसे बरदाश्त नहीं करेगा। बरदाश्त करना भी नहीं चाहिए। अगर यह टिक गया तो हमारा देश रसातल में चला जाएगा, समाज ध्वस्त हो जाएगा, आदमी जानवर बन जाएगा। आप तो पुस्तकें लिखा करते हैं। उसमें लिखिए कि यह अन्याय अगर और कुछ दिनों तक चलता रहा तो इस धरती पर कहीं ढूंढने पर भी मनुष्य नहीं मिलेगा—धरती पर फिर से वही आदिम युग लौट आएगा…"

कहते-कहते उनकी आंखों की पुतलियां स्थिर हो गई। उनके मुंह से फिर कोई शब्द न निकला। वे एकाएक बेहोश होकर बिस्तर पर लुढ़क पड़े।

केशव बाबू की चीख सुनकर तारक भागता हुआ कमरे के अन्दर आया। केशव बाबू की वैसी हालत देखकर वह चिल्लाने लगा, "मालिक, मालिक"

लेकिन जो होना था, हो चुका था। तब उनमें चेतना का नामोनिशान तक न था। तब वे तमाम पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय अच्छे-बुरे के परे जा चुके थे।

इस वात को हुए काफी दिन वीत चुके हैं। अव भी शाम के वक्त टहलने निकलता हूं। चहलकदमी करता हुआ उस मकान की ओर ताकता रहता हूं। अव भी वह मकान पहले-जैसा ही है। अन्दर विजली की नीली रोशनी जलती रहती है, खिड़कियों पर उसी तरह के रेशमी परदे टंगे हैं। वाहर से उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। एकमात्र केशव वावू ही उस मकान में नहीं हैं।

केशव वावू के न रहने पर भी घर की शोभा में कोई कमी नहीं आई है। उसका उत्तराधिकारी है। उनकी लड़की निर्मला है, उनका दामाद काशीकांत है। और हैं उनके वाल-वच्चे। वे लोग आराम से ही रह रहे हैं। केशव वावू के अभाव के कारण उनकी शान्ति की दुनिया में कोई वाधा नहीं पहुंची है। मेरे अलावा कोई नहीं जानता कि यह मकान किसके द्वारा, कितने कष्टों को सहकर वनवाया गया है और अभी कौन उसका उपभोग कर रहा है। कोई जानने को उत्सुक भी नहीं है। और लोग-वाग जान भी जाएं तो उनके रोजमर्रा की, सुख-दुःख की दुनिया में किसी भी तरह की हलचल नहीं मचेगी। वीसवीं शताब्दी की यंत्र-सभ्यता अपना निष्ठुर स्टीम-रोलर चलाती हुई सव-कुछ पीस-पास कर वुरादे में वदल डालती है और फिर उसे समतल भूमि में परिणत कर मनमाने तौर-तरीके से आगे बढ़ती जाती है।

और वासु?—नाहरगढ़ का वह राजा साहव?

वह विशाल वातानुकूलित गाड़ी चलाता हुआ तमाम विश्व का भ्रमण कर रहा है। कभी इंगलैंड जाता है, कभी अमेरिका, कभी जर्मनी और कभी रूस। नाहरगढ़ के राजा साहव के लिए यह पृथिवी अपनी समस्त सम्पदा, अपना समस्त ऐश्वर्य बड़े ही आदर के साथ उनके हाथों में निवेदित कर कृतार्थता का अनुभव कर रही है।

सचमुच, कौन कहता है कि विषय विष है? वह असत्य कहने वाला कौन है?

●●●

मुद्रक : मॉडर्न प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली